दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्गदर्शक आध्यात्मिक मासिक

वीर सं० २४९५ तंत्री-जगजीवन बाउचंद दोशी, सावरकुंडला वर्ष २४ अंक नं० ९

ज्ञानी का लक्षण

जो जीव ज्ञानी के आत्मा में ज्ञान और राग की भिन्नता को जानता है, वह जीव अपने में भी ज्ञान और राग को अवश्य भिन्न मानता है... इसलिये उसे भेदज्ञान होता है। भेदज्ञान होने पर वह जीव समस्त विकार के कर्तृत्व से रहित होकर आनंदमय ज्ञानपरिणाम से सुशोभित होता है।—ऐसा ज्ञानपरिणाम अथवा ज्ञान और राग की भिन्नता का भेदज्ञान ही ज्ञानी का लक्षण है। भेदज्ञान होने पर ही जीव बंधभाव से छूटकर मोक्षमार्ग की ओर अग्रसर होता है।

चारित्र

ज्ञान

दर्शन

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ (सौराष्ट्र)

जनवरी १९६९ वार्षिक मूल्य ३) रुपये (२८५) एक अंक २५ पैसा [पौष सं० २४९५

निवेदन

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रवचन सुनने एवं धार्मिक शिक्षण शिविर में अभ्यास करने के लिये अनेक मुमुक्षु भाई-बहिन सोनगढ़ आते रहते हैं।

हिन्दी भाषी मुमुक्षुओं के लिये धर्मशाला बनायी गई थी, वह अब काफी छोटी पड़ने लगी है। इसलिये ट्रस्ट की वार्षिक मीटिंग में एक योजना बनायी गई है। जिसमें वर्तमान धर्मशाला पर एक मंजिल और बनाने का विचार है। जो महानुभाव ४०००) चार हजार रुपये दान देंगे, उनके नाम का एक कमरा बनवाकर उसमें दाता के नाम की तख्ती लगायी जायेगी। एक कमरे के लिये दो व्यक्ति मिलकर भी दान दे सकते हैं। तथा छोटी रकमें भी स्वीकार की जायेंगी और दाताओं के नाम बोर्ड पर लिखाये जायेंगे। योजना का प्रारम्भ हो चुका है। पहले कमरे के लिये श्री नवनीतलाल चुनीलाल जवेरी बम्बई (प्रमुख-श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंडल ट्रस्ट, सोनगढ़) ने ४०००) चार हजार रुपये की घोषणा की है। कमरे की मालिकी ट्रस्ट की होगी, परंतु दाताओं को या उनके सगे-संबंधियों को उतरने में प्राथमिकता दी जायेगी।

—श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट,
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

शाश्वत् सुख का मार्गदर्शक मासिक-पत्र

आत्मधर्म

संपादक : (१) श्री ब्र० गुलाबचंद जैन (२) श्री ब्र० हरिलाल जैन

जनवरी : १९६९ ☆ पौष, वीर नि०सं० २४९५, वर्ष २४ वाँ ☆ अंक : ९

मैं कौन हूँ ?

संसार की चारों गतियों में दु:ख ही है; और आत्मज्ञान बिना आजतक जीव ने सर्वप्रकार के दु:ख ही उठाये हैं। अब मैं उन दु:खों से छूटने तथा परमानंद की प्राप्ति के लिये अपने आत्मस्वरूप की पहिचान करूँ।—ऐसी जिसे जिज्ञासा हुई है, वह अवश्य आत्मा का निर्णय करता है। मेरा अस्तित्व और सामर्थ्य कैसा है ? कि परचतुष्टय में तो मेरा अस्तित्व नहीं है, और जो रागादि दु:खरूप भाव हैं, उतना भी मेरा अस्तित्व नहीं है; उस रागादिवृत्ति से पार, दु:खरहित नित्य ज्ञानानंदरूप से अवस्थित ऐसा मेरा अस्तित्व पर के अस्तित्व से सर्वथा भिन्न है, उसी का सेवन करने से सुख का अनुभव होता है। —इसप्रकार धर्मी जीव सम्यक् निर्णय द्वारा स्वसंवेदनपूर्वक अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव करता है।

शुद्धोपयोग का फल-अतीन्द्रिय महान सुख

(वही प्रशंसनीय है; राग का फल प्रशंसनीय नहीं)

आचार्य भगवान ने प्रवचनसार के प्रारंभ में पंच परमेष्ठी को नमस्कार करके मोक्ष का स्वयंवर-मंडप रचा है... हम पंच परमेष्ठी में मिलकर मोक्षलक्ष्मी को साधने निकले हैं, उसका यह मंगल-उत्सव है।

मोक्ष का साधन क्या ? कि शुद्धोपयोगरूप वीतराग चारित्र ही मोक्ष का साधन है; और भूमिकानुसार आया हुआ शुभराग तो बंध का कारण है, इसलिये वह हेय है।—इसप्रकार शुभराग को छोड़कर शुद्धोपयोगरूप मोक्षमार्ग को आचार्यदेव ने अंगीकार किया है... स्वयं शुद्धोपयोगी चारित्रदशारूप परिणमन किया है।

इसप्रकार शुभ-अशुभ परिणति को छोड़कर और शुद्धोपयोग परिणति को आत्मसात करके आचार्यदेव शुद्धोपयोग अधिकार प्रारंभ करते हैं; स्वयं तद् का परिणमन करके उसका कथन करते हैं। प्रथम शुद्धोपयोग के प्रोत्साहन के लिये उसके फल की प्रशंसा करते हैं। अहो, शुद्धोपयोग जिनको प्रसिद्ध है, ऐसे केवली भगवन्तों को आत्मा में से उत्पन्न अतीन्द्रिय परम सुख है। सर्व सुखों में उत्कृष्ट सुख केवलियों को है; वह सुख रागरहित है, इन्द्रियविषयों से रहित है, अनुपम है और अविनाशी एवं अविच्छिन्न है। संसार के किन्हीं विषयों में ऐसा सुख नहीं।

अहो, ऐसा अपूर्व आत्मिक सुख परम अद्भुत आह्लादरूप है, जीवों ने पूर्वकाल में कभी उसका अनुभव नहीं किया है। सम्यग्दर्शन में ऐसे अपूर्व सुख के स्वाद का अंश आ जाता है, परंतु यहाँ शुद्धोपयोग के फलरूप पूर्ण सुख की बात है।

शुद्धोपयोग से आत्मा स्वयं अपने में लीन होने पर अतीन्द्रिय सुख उत्पन्न हुआ; उसमें अन्य किसी साधन का आश्रय नहीं, अकेले आत्मा के ही आश्रय से वह सुख प्रगट हुआ है। उसे एक आत्मा का ही आश्रय है और अन्य के आश्रय से निरपेक्ष है, अन्य किसी का आश्रय उसे नहीं—इसप्रकार अस्ति-नास्ति से कहा। आत्मा से ही उत्पन्न और विषयों से रहित—ऐसा सुख ही सच्चा सुख है, और उस सुख का साधन शुद्धोपयोग है। इसलिये वह शुद्धोपयोग उपादेय है। ऐसे शुद्धोपयोग के फलरूप परम सुख का स्वरूप बतलाकर उस ओर आत्मा को

प्रोत्साहित किया है। हे जीव! अतीन्द्रिय सुख के कारणरूप ऐसे शुद्धोपयोग में उत्साहसहित आत्मा को लगा।

संसार के जितने इन्द्रिय-सुख हैं, उन सबसे शुद्धोपयोग का सुख बिल्कुल भिन्न जाति का है, इसलिये वह अनुपम है, उसे अन्य किसी की उपमा नहीं दी जा सकती। अहो, शुद्धोपयोगी जीव का परम अनुपम सुख, वह अज्ञानियों के लक्ष में भी नहीं आता। आगे कहेंगे कि सिद्धभगवंतों के और केवली भगवंतों के उत्कृष्ट अतीन्द्रिय सुख का स्वरूप सुनते ही जो जीव उत्साह से उसका स्वीकार करते हैं, वे आसन्न भव्य हैं। इस अतीन्द्रिय सुख के वर्णन को 'आनंद अधिकार' कहा है; हे जीवो! विषयों में सुखबुद्धि छोड़कर आत्मा के आश्रय से ऐसा परम आनंदरूप परिणमन करो।

यह सुख शुद्धोपयोग द्वारा प्रगट होता है। शुद्धोपयोग द्वारा प्रगट किया हुआ सुख सादि-अनंत काल में कभी नाश को प्राप्त नहीं होता, वह अनंत काल रहनेवाला है। 'सादि-अनंत अनंत समाधि सुख' ऐसा सुख शुद्धोपयोग से ही प्राप्त होता है। अतीन्द्रिय सुख में शुभराग का तो कहीं पर नामनिशान नहीं; राग से और राग के फलरूप सामग्री से पार ऐसा वह सुख है। वह सुख प्रगट होने के बाद उसमें कभी भंग नहीं पड़ता, अविच्छिन्नरूप से निरंतर वह सुख परिणमन करता है। शुद्धोपयोगी जीवों को ऐसा उत्कृष्ट अतीन्द्रिय सुख है, वह सर्वथा इष्ट है, आदरणीय है, प्रशंसनीय है।—शुद्धोपयोग का ऐसा फल बतलाकर आत्मा को उसमें प्रोत्साहित किया है। जिसप्रकार सूर्य को उष्णता के लिये या प्रकाश के लिये अन्य पदार्थ की आवश्यकता नहीं, स्वयमेव वह उष्ण और प्रकाशरूप है; उसीप्रकार सुख और ज्ञान के लिये आत्मा को किसी अन्य पदार्थ की आवश्यकता नहीं, वह स्वयमेव स्वभाव से ही सुखस्वरूप और ज्ञानस्वरूप है। अहो, ऐसे आत्मा को श्रद्धा में तो लो। सिद्धों के सुख को पहिचानने पर ऐसा आत्मस्वभाव पहिचानने में आता है। इन्द्रियों से ज्ञान होता है, राग से सुख होता है—ऐसा माननेवाले सिद्धों और केवलियों को मानते ही नहीं; वीतराग परमेश्वर को वे नहीं जानते, उन्हें तो राग ही मान्य है। रागरहित ज्ञान और सुख प्रतीति में ले तो राग से पृथक् आत्मस्वभाव अनुभव में आ जाये। आचार्य भगवान को स्वयं वैसे अतीन्द्रिय सुख का और अतीन्द्रिय ज्ञान का अंश प्रगट हुआ, तब सर्वज्ञ के सुख की और ज्ञान की सच्ची प्रतीति हुई।

सम्यग्दर्शन

[श्री समयसार गाथा ११ पर पूज्य श्री कानजीस्वामी का प्रवचन]

(अंक २८४ से आगे)

[हे जीवो! स्वभावसन्मुख होकर आनंद का आज ही अनुभव करो!]

पर से पृथक् आत्मवस्तु, वह दो अंशरूप है—त्रिकाली द्रव्यस्वभाव, और क्षणिक पर्याय; उसमें त्रैकालिक द्रव्यस्वभाव शुद्ध है, उसके आश्रय से पर्याय की शुद्धता होती है; इसलिये द्रव्यस्वभाव को मुख्य और पर्याय को गौण किया। पर्याय का अभाव नहीं परंतु वह गौण है। इसप्रकार वस्तु सिद्ध होती है अर्थात् सम्यक् श्रद्धा-ज्ञानपूर्वक वीतरागभाव होता है।

ध्रुवस्वभाव को देखनेवाली तो पर्याय है। यदि पर्याय का निषेध करेंगे तो ध्रुव को कौन देखेगा? देखनेवाली पर्याय अंतरोन्मुख हुई, तब शुद्धनय-अनुसार सच्चे आत्मा को बोध हुआ। शुद्धनय तो पर्याय है, परंतु वह राग से पृथक् होकर भूतार्थस्वभाव में एकाग्र हुई-स्वध्येय को ग्रहण करके उसमें लीन हुई, तब भूतार्थ का आश्रय हुआ और तभी शुद्ध आत्मा का सम्यग्दर्शन हुआ, आत्मा का सच्चा जीवन उसे प्रगट हुआ... ज्ञायकभाव उसे पर्याय में प्रगट हुआ, उसे परमात्मा के दर्शन हुए; उसकी पर्याय में सिद्ध प्रभु का पदार्पण हुआ। ऐसी अपूर्व यह बात है।

रागादि विकल्पों से परमात्मा दूर है; अंतर्मुख ज्ञानपर्याय में परमात्मा समीप वर्तता है। सम्यग्दृष्टि उसे कहा कि जो शुद्ध ज्ञायकभावरूप ही अपने को अनुभव करता है, उसमें अशुद्धता नहीं। ज्ञायकस्वभाव शुद्ध है और उसमें पर्याय एकाग्र हुई, इसलिये शुद्ध का ही अनुभव रहा। भूतार्थस्वभाव में दृष्टि की, वहाँ अभूतार्थ ऐसे बंधभाव बाहर रह गए।—उस पर्याय में शुद्ध का ही अनुभव रहा। वह सच्चा आत्मा, वह भूतार्थ आत्मा, और वह सम्यग्दर्शन है।

प्रभु! एक बार सुन तो सही... यह तेरे सम्यग्दर्शन की मधुर बात है! तेरा शुद्धद्रव्य तुझमें है, उसके आश्रय से तेरी शुद्धपर्याय तुझमें है, तेरा मोक्ष तुझमें है, तेरा मोक्षमार्ग तुझमें है। पर के साथ या राग के साथ तुझे कभी तन्मयता नहीं। ऐसा भेदभाव करके अंतर्मुख होने पर स्व में पर्याय अभेद हुई, वहाँ उसमें गुणभेद या पर्यायभेद का लक्ष नहीं रहता; ज्ञान-दर्शन-चारित्र के भेद आत्मा के स्वभाव में नहीं। उन पर्यायों का अभाव नहीं है, ज्ञान-दर्शनादि गुणों का

अभाव नहीं है, परंतु अभेदरूप एक भूतार्थ आत्मा को देखने पर उसमें गुण-पर्याय के भेदों का विकल्प नहीं रहता। शुद्धआत्मा की ऐसी अनुभूति वह शुद्धनय है, वह सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन अर्थात् अतीन्द्रिय आनंद का मधुर स्रोत।

मैं एक हूँ, अभेद हूँ—ऐसे विकल्प भी सम्यग्दर्शन में नहीं हैं—परंतु समझाना किसप्रकार ?—सामने समझनेवाला यदि भूतार्थस्वभावरूप वाच्य को लक्ष में पकड़ ले तो उसे 'भेदरूप व्यवहार द्वारा अभेद बतलाया'—ऐसा कहा जाये। परंतु भेद में ही रुका रहे और अभेदस्वभाव का अनुभव नहीं करे—उसका तो व्यवहार भी सच्चा नहीं—क्योंकि वह तो भेद के विकल्प को ही भूतार्थ मानकर उसी के अनुभव में रुक गया है। धर्मी तो जानता है कि शुद्धस्वभाव के अनुभव की ओर जाने पर बीच में 'मैं ज्ञानस्वरूप हूँ' इत्यादि भेदविकल्प उठते हैं, परंतु उन विकल्पों का अंतरस्वभाव में प्रवेश नहीं, इसलिये वे अभूतार्थ हैं। भेदविकल्प अनुभव का सच्चा साधन नहीं है, और उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन नहीं होता। सम्यग्दर्शन में तो अकेला शुद्ध आत्मा ही प्रकाशित होता है। वह पर्याय अंतर्मुख होकर अभेद हुई है, उसमें भेद दिखाई नहीं देते; परंतु आत्मा अकेला नित्य ही है और उसमें पर्याय है ही नहीं—ऐसा नहीं है। आत्मा एकान्त नित्य ही है और अनित्य नहीं, अथवा द्रव्य ही है और पर्याय है ही नहीं—ऐसा एकांत नहीं है। द्रव्य-पर्यायरूप अनेकांतवस्तु को जानकर, उसके भेद के विकल्प में न रुककर पर्याय को अंतर्मुख करके अनुभव करना, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है। उसमें निर्विकल्प होने पर आनंद का अनुभव होता है, यही जीव का प्रयोजन है। ऐसे प्रयोजन की सिद्धि के लिये पर्यायभेदरूप व्यवहार को गौण करके उसे अभूतार्थ कहा है; और शुद्ध भूतार्थ स्वभाव के आश्रय से सम्यग्दर्शन कहा है।

परवस्तु तो आत्मा में (पर्याय में भी) है ही नहीं, इसलिये उसे गौण करने का प्रश्न ही नहीं। परंतु अपने में जो भाव विद्यमान है, उन्हें गौण-मुख्य करने की बात है। ज्ञानादि गुण या सम्यक्त्वादि पर्यायें—उनका भेद से विचार करने पर विकल्प उठते हैं और अभेद का आनंद अनुभव में नहीं आता; जब उन भेदों-विकल्पों को छोड़कर अभेदरूप आत्मा को अनुभव में ले, तब वे भेद गौण हो जाते हैं, उनका लक्ष छूट जाता है और एकत्वनिश्चयरूप परिणति होने पर अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव होता है—ऐसा आनंद ही जीव का प्रयोजन है।

हे जीवो! अभेद स्वभावसन्मुख होकर ऐसे आनंद का तुम आज ही अनुभव करो—ऐसा वीतरागी संतों का उपदेश है।●●

प्रत्येक आत्मा ज्ञानस्वरूप है

[श्री समयसार गाथा १७-१८ के प्रवचन से]

☆★☆★☆★☆★☆★☆★

ज्ञानस्वरूप आत्मा की सेवा द्वारा मोक्षमार्ग होता है। प्रत्येक आत्मा ज्ञानस्वरूप होने पर भी वह स्वयं ज्ञानस्वरूप से अपनी उपासना क्यों नहीं करता? तथा ज्ञानस्वरूप से अपनी उपासना कैसे की जाये?—यह दोनों बातें आचार्यदेव ने यहाँ समझायी हैं।

भाई, किसी भी पदार्थ को जानने से तेरा ज्ञान तो साथ ही है, ज्ञान के अस्तित्व में उन पदार्थों को जाना जा सकता है, इसलिये ज्ञान ही मुख्य है।—ऐसे ज्ञान को तू लक्ष में ले; ज्ञेयों से पृथक् जो अकेला ज्ञान है, उस 'शुद्ध ज्ञानस्वरूप मैं हूँ'—ऐसा अनुभव में ले तो मोक्षमार्ग प्रगट होगा और तेरे साध्य की सिद्धि होगी।—ऐसा सिद्धि का मार्ग यहाँ सरल रीति से दिया जा रहा है।

☆★☆★☆★☆★☆★☆★

प्रत्येक जीव को अपनी ज्ञानदशा अनुभव में आती ही है। अज्ञान के कारण वह राग-द्वेषादि परभावों के स्वाद को ज्ञान के साथ एकमेक अनुभव करता है; परंतु उसमें जो परभावों से भिन्न ज्ञानरूप अपना स्वाद है, उसे यदि पहिचाने तो ज्ञानमात्र आत्मा का ज्ञान अर्थात् आत्मज्ञान हो, और ऐसे ज्ञानपूर्वक आत्मा की सच्ची श्रद्धा हो जाये।—इसप्रकार ज्ञानस्वरूप की सच्ची श्रद्धा एवं ज्ञान होने पर ही जीव अपने स्वरूप में स्थिर हो सकता है और तभी मोक्ष की सिद्धि होती है।

यह जो समस्त भाव हैं, उनमें शरीरादि या रागादि वह मैं नहीं हूँ, ज्ञानभाव ही मैं हूँ—इसप्रकार अपने को ज्ञातास्वरूप से ही अनुभव में लेने पर आत्मज्ञान होता है। जिसप्रकार अरहंत को पहिचानने से आत्मा की पहिचान होती है—ऐसा कहा; उसमें कहीं परम औदारिक दिव्य शरीर वह अरहंत की पर्याय नहीं है, वह तो जड़-पुद्गल की पर्याय है, उस पर्याय द्वारा अरहंत के आत्मा की पहिचान नहीं होती; उसीप्रकार मणि-रत्नों के छत्र, चमर, सिंहासन

आदि प्रातिहार्य भी जड़ के संयोग हैं, उन प्रातिहार्यों की शोभा द्वारा अरिहंत के आत्मा की पहिचान नहीं होती, क्योंकि वह भी अरिहंत की पर्याय नहीं है; अरिहंतदेव की पर्याय तो केवलज्ञानादिरूप है, जिसमें रागादि नहीं हैं;—ऐसी केवलज्ञानादि पर्याय द्वारा तथा उनके गुण-द्रव्य द्वारा अरिहंत को पहिचानने से ज्ञानस्वरूप आत्मा की पहिचान होती है; और तब जड़ के संयोग से तथा परभावों से भिन्न मैं ज्ञानस्वरूप हूँ—ऐसा भेदज्ञान तथा सम्यग्दर्शन होता है। इसप्रकार ज्ञानस्वरूप आत्मा की प्रतीति हुई, तब अरहंत के आत्मा की पहिचान हुई और तब मोक्षमार्ग का प्रारंभ हुआ।

यहाँ भी कहते हैं कि प्रत्येक आत्मा ज्ञानस्वरूप है; उस ज्ञानस्वरूप आत्मा का ज्ञानरूप अनुभव न करके रागादिरूप या जड़रूप मानकर ज्ञान को भूल जाता है, इसलिये अज्ञानी को शुद्ध आत्मा की सिद्धि नहीं होती, वह तो अशुद्ध आत्मा का ही अनुभव करता है। अनेक भावों का (ज्ञान, राग और संयोगों का) मिश्रपना होने पर भी उसमें जो ज्ञानरूप से अनुभव में आता है, वही हूँ मैं और इसके अतिरिक्त अन्यभाव वह मैं नहीं हूँ—इसप्रकार भेदज्ञान में प्रवीण होकर नि:शंकरूप से अन्य समस्त भावों से भिन्न शुद्धज्ञानस्वरूप ही अपना अनुभव करता है, तभी उसमें एकाग्र होकर आत्मा अपनी शुद्धता को साधता है। इसप्रकार साध्य की सिद्धि होती है।

किसी भी पदार्थ को जानते हुए उसमें अपना ज्ञान तो मुख्य है ही। ज्ञान के अस्तित्व बिना ज्ञेय का अस्तित्व कदापि नहीं जाना जा सकता। ज्ञान के बिना ज्ञेय काहे में ज्ञात होगा ?—इसप्रकार ज्ञान के अस्तित्व में ही ज्ञेय का अस्तित्व ज्ञात होता है, तथापि अज्ञानी उस ज्ञान को ही भूल जाता है। अरे भाई! ज्ञेयों को जानते हुए ज्ञानस्वरूप से तेरा अस्तित्व है, उसे तू क्यों भूल जाता है! अरे, जाननेवाले ने पर को जाना परंतु स्वयं अपने को ही भूल गया! श्रीमद् राजचंद्र एक पत्र में ज्ञान की मुख्यता बतलाते हुए लिखते हैं कि—

"कोई भी जाननेवाला, कभी भी किसी भी पदार्थ को अपने अविद्यमानरूप से जाने—ऐसा नहीं हो सकता। प्रथम अपनी विद्यमानता होनी चाहिये... सर्वप्रथम विद्यमान जो (ज्ञायक) पदार्थ, वह जीव है; उसे गौण करके अर्थात् उसके बिना कोई कुछ भी जानना चाहे तो वह नहीं जान सकता; मात्र वही मुख्य हो, तभी दूसरा कुछ जाना जा सकता है।" इसप्रकार जीव की ऊर्ध्वता है, मुख्यता है, उसके अस्तित्व में ही सर्व पदार्थों को जाना जा सकता है। सबको जाननेवाला स्वयं, तथापि स्वयं अपने को भूल रहा है!

घट पद आदि जान तू, इससे उनको मान,
जाननहार को मान नहिं, कहिये कैसा ज्ञान! *(श्रीमद् राजचंद्र)*

'मैं ज्ञानस्वरूप नहीं हूँ, और पदार्थ मुझे ज्ञात होते हैं—यह कैसी बात है ? पदार्थ मुझे ज्ञात होते हैं, तो उनका ज्ञाता तू पहले ही ज्ञानस्वरूप सत् है—ऐसे अपने अस्तित्व को जान।

अहा, प्रत्येक जीव को पर्याय-पर्याय में ज्ञान तो प्रकाशित हो ही रहा है; परंतु ज्ञान को ज्ञानरूप न जानकर रागरूप तथा जड़ ज्ञेयरूप मान लेता है; मैं ज्ञानस्वरूप हूँ—ऐसा अनुभव नहीं करता परंतु अपने को रागादिरूप ही मानता है।—इसप्रकार 'अनुभूतिरूप जो ज्ञान है, वही मैं हूँ'—ऐसा आत्मज्ञान न होने से उस अज्ञानी को ज्ञानस्वरूप में एकाग्रतारूप मोक्षमार्ग सिद्ध नहीं होता; वह तो रागादि में ही एकाग्रता से अज्ञानभाव के कारण संसार में भटकता है।

कौन-सा जीव ज्ञानरहित होगा ?—कोई जीव ज्ञानरहित नहीं होता। अपने को उस ज्ञानरूप न जानकर अन्यभावोंरूप ही मानना, सो अनात्मज्ञान है—मिथ्यात्व है, अप्रतिबुद्धपना है। वह कैसे दूर हो ?—उसकी यह बात है।

'ज्ञानस्वरूप अनुभव है, सो मैं हूँ'—इसप्रकार शुद्धात्मा की प्रतीति द्वारा अज्ञान दूर होकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट होता है। इन ज्ञेयरूप से ज्ञात होनेवाले अनेक भावों में जो ज्ञान की रचना करनेवाला है, वही मैं हूँ; राग की रचना करनेवाला मैं नहीं हूँ; जड़ की-भाषा की-शरीर की रचना करनेवाला मैं नहीं हूँ; उन्हें जाननेवाला जो ज्ञान, उस ज्ञान का रचयिता ज्ञानस्वरूप मैं हूँ।—इसप्रकार परभावों से पृथक्करण करके ज्ञानस्वरूप से स्वयं अपने को अनुभव में लेना, वह ज्ञान का सेवन है, वह जीव राजा की सेवा है और वही मोक्ष का मार्ग है।

''सोने का क्या भाव है ?''

एक बार रात्रिचर्चा के प्रारंभ में पूज्य स्वामीजी ने कहा—मुझे एक बात पूछना है।

सब लोग आश्चर्यपूर्वक बात सुनने के लिये आतुर हो गये कि—स्वामीजी क्या पूछना चाहते हैं ?

इतने में स्वामीजी ने पूछा—'सोने का क्या भाव है ?'

क्षणभर सब विचार में पड़ गये।

शायद आप भी विचार में पड़ गये होंगे

—तो—

सोने का भाव जानने के लिये देखिये पृष्ठ ११

सोने का भाव

मगसिर कृष्णा ४ की रात्रिचर्चा के समय पूज्य स्वामीजी ने पूछा कि—'सोने का क्या भाव है ?'

एक श्रोता ने उत्तर दिया—पता नहीं आजकल सोने का क्या भाव चल रहा है ?

दूसरे सज्जन बोले—आज अखबार में भाव नहीं देखा।

स्वामीजी बोले—सोने का भाव तो सोने में होता है, सोने का भाव कहीं उससे पृथक् नहीं होता।

सोने के रजकणों में जो वर्ण-गंध-रस-स्पर्श है, वही उसका भाव है।

भाव अर्थात् वस्तु का गुण।

जैसे—आत्मा का भाव क्या ?—कि ज्ञान-दर्शन-चारित्र आदि अनंत गुण ही आत्मा का भाव है। अरे, तुम्हारे आत्मा का भाव क्या ?—उसकी भी तुम्हें खबर नहीं है ?

प्रत्येक वस्तु के गुण ही उसका स्वभाव है।

आत्मा का भाव तो त्रिकाल अनंत-ज्ञानादिरूप है। क्षणिक रागादि विकार, वह आत्मा का सच्चा भाव नहीं है, उस रागभाव द्वारा आत्मा का यथार्थ मूल्यांकन नहीं होता। वस्तु को उसके सच्चे भाव द्वारा पहिचानना चाहिये।

जिसप्रकार कोई लाखों रुपये के हीरे का मूल्य पाँच पैसा बतलाये तो उसे हीरे के मूल्य की खबर नहीं है; उसीप्रकार यह चैतन्यहीरा अनन्त ज्ञानसम्पन्न है; कोई इसका मूल्य राग जितना माने तो उसे चैतन्यहीरे के सच्चे भाव की खबर नहीं है। आत्मा का भाव—आत्मा का गुण उसने नहीं जाना है। वस्तु का 'भाव' जाने बिना उसकी प्राप्ति नहीं हो सकती।

प्रत्येक वस्तु में अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव होते हैं और उनके द्वारा वस्तु जानी जाती है।

आत्मा गुण-पर्यायों को धारण करनेवाला द्रव्य है।

असंख्य अरूपी चैतन्यप्रदेश, वह उसका क्षेत्र है।

वर्तमान जिस पर्याय में वह वर्तता है, वह उसका काल है।

ज्ञानादि अनंत गुण, वह आत्मा का भाव है।

—इसप्रकार 'सोने के भाव' का दृष्टांत देकर पूज्य स्वामीजी ने आत्मा के भाव समझाये थे!

❊ ❊ ❊

कई लोग कहते हैं कि—अरे, अपना तो कोई भाव ही नहीं पूछता।

परंतु भाई! तूने स्वयं कभी अपना 'भाव' पूछा है? तेरा अपना भाव क्या है, उसकी तुझे खबर है? अभी तो स्वयं तुझे ही अपने भाव की खबर नहीं है... पहले तू स्वयं अपने भाव को जान। दूसरे पूछें या न पूछें, परंतु तेरा भाव तो तुझमें ही है। अनंत ज्ञान-दर्शन-आनंद के भाव तुझमें भरे हैं; उनकी अपार महिमा है। जड़ भाव से पृथक् और रागभाव से भी दूर... परमानंद से परिपूर्ण तेरा चैतन्यभाव है। वह तेरा सच्चा भाव है।

पुण्य द्वारा या शुभराग द्वारा तू आत्मा को ग्रहण करना चाहे तो वह मिथ्याभाव है, वह आत्मा का सच्चा भाव नहीं है।

ज्ञानरूप भाव ही आत्मा का सच्चा भाव है, उस भाव द्वारा आत्मा की प्राप्ति (अनुभव) होती है।

—ऐसे अपने आत्मभाव को तू जान!

★ अमर होने की सरल रीति ★

तुम्हें अमर होना है? .....हाँ।

तो जितने नाशवान-मृत्यु प्राप्त करनेवाले पदार्थ हैं, उनकी अपने से भिन्नता जानो... बस, फिर तुम्हारी मृत्यु कभी नहीं होगी; अमरता प्राप्त हो जायेगी।—क्योंकि—

आत्मा तो अमर है, और जो मरता है, वह आत्मा नहीं है। यदि नाशवान वस्तु के साथ मित्रता रखोगे तो तुम अमर कैसे हो पाओगे?

अतीन्द्रिय सुख की आनंदकारी बात

[श्री प्रवचनसार, गाथा ६४ पर पूज्य स्वामीजी का प्रवचन]

मोक्षसुख के आनंद की बात

मोक्षसुख के आनंद की बात सुनते हुए मुमुक्षु को सहज ही उल्लास आता है। इस संबंध में उमराला नगर के उजमबा-स्वाध्यायमंदिर की दीवाल पर लिखा है कि—'ज्ञानी के श्रीमुख से आत्मा के अतीन्द्रिय स्वभावसुख की कथा सुनने पर जिनके अंतर में उल्लास आता है, वे मुमुक्षु जीव अवश्य मोक्ष की प्राप्ति करेंगे।' ऐसे मोक्षसुख की अद्‌भुत बात दो हजार वर्ष पूर्व श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव इस भरतक्षेत्र में सुनाते थे; वही बात पूज्य स्वामीजी वर्तमान में हम सबको सुना रहे हैं।

अतीन्द्रिय सुख की अद्‌भुत महिमा बतलाकर आचार्यदेव कहते हैं कि अहो, ऐसा जो आत्मा का उत्कृष्ट सुख उसकी श्रद्धा करनेवाला सम्यग्दृष्टि है, आसन्न भव्य है; जिन्होंने अपने में ऐसे इन्द्रियातीत सुख का स्वाद लिया है, वही सर्वज्ञ के अतीन्द्रिय पूर्ण सुख की परमार्थ श्रद्धा कर सकते हैं। जिन्हें ऐसे सुख की खबर नहीं और इन्द्रिय-विषयों में ही सुख की लालसा कर रहे हैं, वे जीव आसन्नभव्य नहीं; वे तो विषयों में आकुल-व्याकुल परिणमन करते हुए दु:ख में तड़पते हैं।

अतीन्द्रिय आत्मा को जाननेवाला प्रत्यक्ष ज्ञान तो उनके नहीं है; एकांत परोक्षबुद्धि के कारण इन्द्रियों के साथ ही उनको मित्रता है। महामोह के अतिशय दु:ख के कारण वे जीव बाह्य विषयों को रमणीक मानकर वेगपूर्वक उस ओर दौड़ते हैं, परंतु उनमें सच्चे सुख की गन्ध भी नहीं मिलती, इसलिये वे एकांत दु:खी हैं।

आचार्यदेव कहते हैं कि अरे, जिनका ज्ञान इन्द्रियों की ओर ही प्रवर्त रहा है, उन जीवों ने अतीन्द्रिय सुख से परिपूर्ण आत्मा की मैत्री छोड़ दी है, और जड़ इन्द्रियों के साथ मित्रता की

है। इसलिये उनको इन्द्रियाँ जीवित हैं, परंतु अतीन्द्रिय भगवान आत्मा तो मानों मर ही गया हो—इसलिये वह तो उन्हें दिखाई नहीं देता। इन्द्रिय-विषय दिखाई देते हैं, परंतु उनसे रहित अतीन्द्रिय आनंद का सागर उन्हें दिखाई नहीं देता। जहाँ सुख भरा है, वहाँ मित्रता नहीं करते, और जहाँ एकांत दुःख है, वहाँ मित्रता करने दौड़ते हैं। ऐसे जीवों को श्रीमद् राजचन्द्रजी कहते हैं कि—

'अनंत सुख नाम दुःख त्यां रही न मित्रता,
अनंत दुःख नाम सुख प्रेम त्यां विचित्रता!
उघाड न्यायनेत्र ने निहाल रे! निहाल तुं,
निवृत्ति शीघ्रमेव धारी ते प्रवृत्ति बाळ तुं।'

अरे, अनंतसुख से परिपूर्ण यह आत्मस्वभाव, उसकी आराधना में दुःख मानकर उसकी मित्रता तो छोड़ दी है! जिसमें किंचित् दुःख नहीं, अनंत सुख भरा है—उसमें तू प्रीति क्यों नहीं करता? और बाह्य विषय, कि जिनकी प्रीति में अनंत दुःख है, तथापि वहाँ सुख की कल्पना करके अज्ञानी प्रेम करता है, यह आश्चर्य की बात है! जिसमें सुख भरा है, उसके सामने तो देखता नहीं, और जिसमें स्वप्न में भी सुख नहीं, उसमें प्रेम करता है, यह अज्ञान है। ऐसे अज्ञान को हे जीव! तू छोड़! और ज्ञाननेत्र खोलकर देख... तुझमें ही सुख है, उसका अवलोकन कर... और बाह्य विषयों में सुखबुद्धि की विपरीत प्रवृत्ति शीघ्र छोड़!

ज्ञानियों को चैतन्य का अतीन्द्रिय सुख होने के कारण उन्हें किसी विषय में रुचि नहीं होती। शुभ या अशुभ किसी भी इन्द्रिय-विषय में या उस ओर के राग में धर्मी जीव को कभी सुख भासित नहीं होता। अरे, अतीन्द्रिय आनंद का स्वामी यह चैतन्य-भगवान, वह इन्द्रिय-विषयों में रुक जाये—यह तो निंदनीय है। इन्द्रियों को दुःख का कारण कहा, परंतु इन्द्रियाँ तो जड़ हैं, उस ओर की वृत्ति, वह निंदनीय एवं दुःखरूप है। दुःखी जीव ही बाह्य विषयों की ओर आकुलता से दौड़ते हैं। यदि दुःखी न होते तो इन्द्रिय-विषयों की ओर क्यों दौड़ते? अतीन्द्रिय चैतन्यसुख के स्वाद में लीन संतों को इन्द्रिय-विषयों के प्रति आसक्ति नहीं होती।

अहा, आत्मा के अतीन्द्रिय सुखस्वभाव की अलौकिक बात प्रसन्नता से जिसके अंतर में बैठ गई, आचार्यदेव कहते हैं कि वह जीव अल्पकाल में मोक्ष की प्राप्ति करेगा; क्योंकि उसकी रुचि इन्द्रियों की ओर से तथा इन्द्रिय-ज्ञान की ओर से विमुख होकर अतीन्द्रिय ज्ञान-

आनंद स्वभाव की ओर उल्लसित हुई है। चैतन्यस्वभाव के समीप और इन्द्रियों से दूर होकर वह आत्मा अतीन्द्रिय सुख का अनुभव करेगा।

चैतन्य-जीवन की ज्योति इन्द्रियों में नहीं; इन्द्रियों के संग से चैतन्य-जीवन की ज्योति मंद पड़ जाती है। भाई! तू अतीन्द्रिय वीतरागी चैतन्यज्योति है, तुझे इन्द्रियों के साथ मित्रता कैसी? अतीन्द्रिय स्वभावोन्मुख जगमगाती ज्ञानज्योति ही अतीन्द्रिय सुख का कारण है।

सिद्ध भगवंत इन्द्रियों के तथा शरीर के बिना ही परमसुखरूप परिणमन करते हैं। उनको शरीररहित अतीन्द्रिय सुख होता है। जिसप्रकार वहाँ शरीर के बिना ही सुख है, इसलिये शरीर वह सुख का साधन नहीं है; उसीप्रकार निचलीदशा में सशरीर जीवों को भी शरीर, वह सुख का साधन नहीं है। अज्ञानी मिथ्याकल्पना से मानता है कि शरीर में और इन्द्रियविषयों में सुख है, परंतु वह कल्पना भी शरीर के कारण या विषयों के कारण नहीं हुई है। यह शरीरादिक तो अचेतन हैं, वे जीव की परिणति में अकिंचित्कर हैं।

अज्ञानी का जो कल्पित इन्द्रिय-सुख (सच्चा सुख नहीं, परंतु सुख की मात्र कल्पना) उसमें शरीर किंचित् साधन नहीं होता; शरीर सुख की कल्पनारूप से परिणमन नहीं करता, अथवा शरीर ऐसा नहीं कहता कि तू मुझमें सुख की कल्पना कर। अज्ञानी अपने मोह के वश ही पर में सुख की मिथ्याकल्पना करता है।—इसप्रकार संसार-दशा में कल्पित सुख में भी शरीरादि विषय साधन नहीं होते, तो फिर अरहंतों और सिद्धों का जो परम अतीन्द्रिय सहज आत्मिक सुख, उसमें शरीरादि विषय क्या करेंगे? वे तो अकिंचित्कर हैं।

अहो, ऐसे सुख को कौन नहीं स्वीकार करेगा? आत्मा के ऐसे सुखस्वभाव को जानकर बाह्य विषयों में सुखबुद्धि कौन नहीं छोड़ेगा?—आचार्यदेव कहते हैं कि भव्य जीव आत्मा के सुख की यह बात सुनते ही उल्लासपूर्वक उसका स्वीकार करते हैं, और बाह्य विषयों में सुखबुद्धि को तुरन्त ही छोड़ते हैं—ऐसे जीव अल्पकाल में मोक्षसुख की प्राप्ति करते हैं।

देखो, यह मोक्षसुख के आनंद की बात! आत्मा त्रिकाल शुद्ध उपादानस्वरूप पूर्ण अतीन्द्रिय परम सुख से परिपूर्ण है; उसे भूलकर अशुद्ध उपादानरूप परिणमन करता हुआ आत्मा स्वयं इन्द्रियसुखरूप परिणमित होता हुआ पर में सुख की कल्पना करता है। और जब शुद्धस्वरूप का अनुभव करके स्वसन्मुख शुद्ध उपादानरूप से परिणमन करता हुआ आत्मा

स्वयमेव अतीन्द्रिय सुखरूप होता है, तब उसमें भी परद्रव्य किंचित् साधन नहीं है। अन्य किसी कारण बिना आत्मा स्वयं सुखकारणरूप परिणमित होता हुआ अतीन्द्रिय सुखरूप होता है। अहा, तेरे मोक्षसुख की कैसी आनंदकारी बात है! सिद्ध जैसे सुखरूप होने की तेरी अपनी शक्ति है, उसमें अन्य किसी साधन की आवश्यकता नहीं है। जहाँ शरीर भी साधन नहीं, वहाँ अन्य साधन की क्या बात! निचली दशा में भी शरीर है; परंतु वह शरीर कहीं साधन होकर पर में सुख की कल्पना नहीं करवाता; अज्ञानी स्वयं अपने अज्ञान से ऐसी कल्पना करता है।—इसप्रकार अज्ञान में या ज्ञान में इन्द्रियसुख की कल्पना में या अतीन्द्रिय सुख के वेदन में कहीं भी शरीर या इन्द्रिय साधन नहीं हैं; जीव ही तद्रूप परिणमन करता है।

जीव स्वयं सुखस्वभावी है। जैसे ज्ञान जीव का स्वभाव है, उसीप्रकार सुख भी जीव का स्वभाव है। उस स्वभाव की वीतरागदशा में अतीन्द्रिय सुख है, और उसे भूलकर विपरीत दशा होने से पर में सुख की मिथ्याकल्पना करता है; परंतु परद्रव्य जीव का कुछ भी नहीं करता। पर के कारण शुभराग नहीं, और शुभराग के कारण सच्चा सुख नहीं। ज्ञान को इन्द्रियों से पृथक् करके स्वभावसन्मुख होने पर अतीन्द्रिय सुख का वेदन होता है; और ऐसा अतीन्द्रियज्ञान ही अतीन्द्रिय सुख का साधन है। सुख कहो या धर्म कहो, उसमें शरीर, इन्द्रियाँ किंचित् साधन नहीं हैं। उन सबके अभाव में आत्मा स्वयं अकेला ही परम सुखरूप परिणमन करता है। जीव की शक्ति स्वयं सुखरूप परिणमन करने की है।

अहो, मोक्षसुख की ऐसी आनंदकारी बात प्रसिद्ध करते हुए आचार्यदेव कहते हैं कि ऐसे दिव्य आत्मस्वरूप का अनुभव करो... और बाह्य विषयों को छोड़ो। सिद्ध भगवान जैसे अपने अचिंत्य ज्ञान-आनंदस्वरूप को जानकर, सुख के अभिलाषी जीव विषयालंबी भाव छोड़कर आत्मा का ही आश्रय करके परम आनंदरूप से परिणमन करो!

परम आनंदरूप परिणमन करनेवाले अरिहंतों को नमस्कार हो!

'ज्ञान की सेवा' वह क्रिया है, वह नई होती है

समयसार, गाथा १७-१८ में मोक्ष के लिये ज्ञानस्वरूप आत्मा की सेवा करना—इसप्रकार ज्ञान के सेवन का उपदेश है।

वहाँ शिष्य पूछता है कि—प्रभो! आत्मा तो सदा ज्ञानस्वरूप है ही, इसलिये ज्ञान का सेवन करता ही है, ज्ञान से पृथक् तो नहीं है; तथापि ज्ञान के सेवन का उपदेश किसलिये देते हैं? आत्मा अपने ज्ञानगुण से कभी पृथक् तो है नहीं, ज्ञान के साथ तादात्म्य ही है; फिर ज्ञान की सेवा का उपदेश किसलिये देते हैं?—देखो, इस प्रश्न के उत्तर में आचार्यदेव वस्तुस्वरूप को स्पष्ट करके समझाते हैं कि—भाई! आत्मा ज्ञानगुण के साथ सदा तादात्म्य है, यह सच है; तथापि उसने ज्ञान का एक क्षण भी सेवन नहीं किया है; क्यों नहीं किया है? क्योंकि जब पर्याय को ज्ञान के साथ तादात्म्य करे, तब ज्ञान का सेवन कहा जाता है। पर्याय तो राग के साथ तादात्म्य होकर राग का ही सेवन करती है—राग का ही अनुभव करती है; ज्ञान में तन्मयरूप परिणमित नहीं होती और ज्ञान का अनुभव नहीं करती, इसलिये ज्ञान का सेवन नहीं करती।

क्योंकि 'सेवन करना' वह क्रिया है और क्रिया, वह पर्याय में होती है; द्रव्य-गुण में नहीं। द्रव्य-गुण तो त्रिकाल ज्ञानस्वरूप हैं; आत्मद्रव्य की तथा ज्ञानगुण की सदा तद्रूपता है, यह ठीक है, परंतु उसमें कहीं ज्ञान के सेवनरूप क्रिया नहीं है; ज्ञान की सेवारूप क्रिया कब होती है?—कि यथार्थ भेदज्ञान का उपदेश प्राप्त करके अंतर में राग और ज्ञान की भिन्नता के विवेक द्वारा आत्मा को यथार्थ स्वरूप से जाने और उसमें तन्मय होकर परिणमित हो—ऐसा परिणमन हो, उसका नाम ज्ञान की सेवा है; और ज्ञान के सेवनरूप यह क्रिया, सो पर्याय है। ऐसी पर्याय प्रगट हुए बिना ज्ञान की सेवा नहीं होती। ज्ञानस्वभाव तो नित्य है और पर्याय उस ओर उन्मुख होकर उसमें तद्रूप परिणमित हुई, उसका नाम ज्ञान की सेवा है; वही मोक्षमार्ग है।

द्रव्य और गुण तो सदा तादात्म्य है ही, परंतु जब पर्याय भी उसी में तादात्म्यरूप होकर परिणमित हो, तब शुद्ध आत्मा का सेवन (श्रद्धा-ज्ञान-आचरण) किया कहा जाये; तब

शुद्धात्मा की सिद्धि हो। शुद्धात्मा के सेवनरूप क्रिया, वह द्रव्य-गुण में नहीं होती, वह तो पर्याय में होती है।

पर्याय अंतर में ज्ञानस्वभावोन्मुख होकर तन्मय होने के बदले रागादि परभावों के ही वेदन में तन्मयरूप से वर्ते तो वह पर्याय स्वयं विकाररूप—अज्ञानरूप है; उसमें ज्ञानसेवन की क्रिया नहीं है परंतु अज्ञान का सेवन है। ज्ञान का सेवन तो तभी होता है कि जब ज्ञानी का यथार्थ उपदेश पाकर जीव पुरुषार्थ द्वारा प्रतिबुद्ध हो और अपने को राग से अत्यन्त भिन्न ज्ञानस्वरूप ही जानकर अनुभव करे। ऐसा अनुभव वह ज्ञान की क्रिया है, वह मोक्षमार्ग है, वह अपूर्व ज्ञानक्रिया नवीन प्रगट होती है। जब पर्याय में ऐसा ज्ञानभाव प्रगट हुआ, तभी ऐसी सच्ची पहिचान हुई कि—'मेरे द्रव्य-गुण भी ऐसे ज्ञानस्वरूप ही हैं। द्रव्य-गुण शुद्ध हैं, ऐसा जाने वहाँ पर्याय भी उसमें तद्रूप होकर शुद्ध होती ही है! अंतर में तद्रूप होकर पर्याय में शुद्धता हुए बिना द्रव्य-गुण की शुद्धता को जाना किसने? जाननेरूप कार्य तो पर्याय में होता है। इसप्रकार द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों एकरूप होकर शुद्धज्ञानभावरूप परिणमित हुए, तब आत्मा 'शुद्ध' हुआ, तब ज्ञान की सेवा हुई, तभी ज्ञानी की परमार्थ उपासना हुई, तब धर्म की क्रिया हुई और मोक्षमार्ग हुआ। इसप्रकार ज्ञान की सेवा द्वारा शुद्ध आत्मा की सिद्धि होती है।

स्वानुभूति का सुख

अनादिकाल से स्वरूप को भूलकर सम्यग्दर्शन के बिना संसार में परिभ्रमण करता हुआ यह जीव समस्त परभावों को बारंबार भोग चुका है, संसार संबंधी सर्व सुख-दुःखों का स्वाद ले चुका है, किन्तु अपने स्वरूप के वास्तविक सुख का एक क्षणमात्र भी अनुभव नहीं किया।.....कि जिस सुख के समक्ष जगत के सभी इन्द्रिय-सुख अत्यंत नीरस हैं। इन्द्रिय-सुखों से आत्मिक-सुख की जाति ही भिन्न है। हे जीव! ज्ञानस्वभाव के अवलंबन द्वारा सम्यग्दर्शन का प्रयत्न करके स्वानुभूति में तू अपने अतीन्द्रिय सुख का अनुभव कर।

ज्ञानी को पहिचानने का लक्षण

[जिसके अंतर में भेदज्ञान की अभिलाषा जागृत हुई है और भेदज्ञान के लिये ही जो अभ्यास करता है, ऐसा शिष्य प्रश्न करता है कि प्रभो! आत्मा ज्ञानस्वरूप हुआ, यह कैसे पहिचाना जाता है? आत्मा भेदज्ञानी हुआ, यह कैसे जाना जाता है? ज्ञानी को पहिचानने का क्या लक्षण है? अनादि से आत्मा विकाररूप होता हुआ अज्ञानी था, उस अज्ञान को दूर करके आत्मा ज्ञानी हुआ, वह किस लक्षण से पहिचाना जाये? उसे समझाइये। देखो, यह ज्ञानी को पहिचानने की उत्कंठा! ऐसी रुचिवाले शिष्य को आचार्यदेव ज्ञानी के लक्षण की पहिचान कराते हैं।]

जो आत्मा ज्ञानी हुआ, वह अपने एक ज्ञायकस्वभाव का अनुभव करता हुआ ज्ञानभावरूप ही परिणमन करता है, और वह विकार के या कर्म के कर्तारूप परिणमन नहीं करता। यह ज्ञानी का लक्षण है।

देखो, यह ज्ञानी को पहिचानने का चिह्न! ऐसे चिह्न से ज्ञानी को पहिचाने, उसे भेदज्ञान हुए बिना नहीं रहता, इसलिये वह स्वयं भी ज्ञानी हो जाता है।

यहाँ ज्ञानपरिणाम को ही ज्ञानी का चिह्न कहा; ज्ञानी का लक्षण तो ज्ञान में होता है, कहीं शरीर में या राग में ज्ञानी का लक्षण नहीं होता। शरीर की अमुक चेष्टाओं द्वारा या राग द्वारा ज्ञानी की पहिचान नहीं होती; ज्ञानी तो उससे भिन्न हैं। इसलिये आचार्यदेव कहते हैं कि—हे शिष्य! जो जीव ज्ञान को और राग को एकमेक नहीं करते परंतु भिन्न ही मानते हैं, भिन्न मानते हुए रागादि के कर्ता नहीं होते परंतु ज्ञाता ही रहते हैं और ज्ञानपरिणाम के ही कर्ता होकर परिणमन करते हैं, उन्हें तू ज्ञानी मान।

व्याप्य-व्यापकपने के सिद्धांत द्वारा यहाँ ज्ञानी की पहिचान करायी है। ज्ञान-परिणाम के साथ जिसको व्याप्य-व्यापकपना है, वह ज्ञानी है; विकार के साथ जिसको व्याप्य-व्यापकपना है, वह अज्ञानी है। व्याप्य-व्यापकपना एक स्वरूप में ही होता है, भिन्नस्वरूप में

नहीं होता; इसलिये जिसे जिसके साथ एकता हो, उसे उसके साथ व्याप्य-व्यापकपना होता है, और उसी के साथ कर्ताकर्मपना होता है। ज्ञानी ज्ञान के साथ ही एकता करके उसी में व्याप्त होता हुआ उसका कर्ता होता है, इसलिये ज्ञानरूप कार्य से ज्ञानी पहिचानने में आता है। ऐसा ज्ञानी विकार के साथ एकता नहीं करता, उसमें वह व्याप्त नहीं होता और उसका वह कर्ता नहीं होता। इस कारण ज्ञान की विकार के साथ एकता नहीं है। ज्ञानी का ऐसा लक्षण जो जीव पहिचाने, उसे भेदज्ञान होने से विकार का कर्तृत्व छूट जाता है और ज्ञान में ही एकतारूप से परिणमन करता हुआ वह ज्ञानी होता है। भेदज्ञान बिना ज्ञानी की सच्ची पहिचान नहीं होती।

जैसे घड़े में और मिट्टी में एकता है परंतु घड़े में और कुम्हार में एकता नहीं है; उसीप्रकार ज्ञानपरिणाम और आत्मा में एकता है, परंतु ज्ञानपरिणाम और राग में या कर्म में एकता नहीं है, इसलिये ज्ञानपरिणाम द्वारा ही ज्ञानी का आत्मा पहिचाना जाता है; ज्ञानपरिणाम को राग से भिन्न पहिचानने पर अपने में भी ज्ञान और राग की भिन्नता का वेदन होकर, ज्ञानपरिणाम के साथ अभेद ऐसे अपने आत्मा की पहिचान होती है। ज्ञानी को पहिचानने का प्रयोजन तो अपने आत्मा की पहिचान करना है। जिन्होंने भेदज्ञान कर लिया, ऐसे जीवों की पहिचान द्वारा यह जीव अपने में भी वैसा भेदज्ञान करना चाहता है। जो जीव ज्ञानी के आत्मा में ज्ञान और राग की भिन्नता को जानता है, वह जीव अपने में भी ज्ञान और राग को अवश्य भिन्न जानता है; इस कारण उसे अवश्य भेदज्ञान होता है। भेदज्ञान होने पर यह जीव समस्त विकार के कर्तृत्व से रहित होकर ज्ञायकरूप से शोभायमान होता है। विकार के कर्तृत्व में तो जीव की शोभा नष्ट होती है और भेदज्ञान द्वारा वह कर्तृत्व छूटने पर आनंदमय ज्ञानपरिणाम से जीव सुशोभित होता है। ऐसा ज्ञानपरिणाम ही ज्ञानी को पहिचानने का लक्षण है।

देखो, यह ज्ञानी को पहिचानने की रीति! आचार्यदेव ने ज्ञानी को पहिचानने की अद्‌भुत रीति बतलायी है। इस रीति से जो ज्ञानी को पहिचानेगा, वह स्वयं ज्ञानी हुए बिना नहीं रहेगा। यह पहिचान ही धर्म की खान है। इस प्रकार जिसने ज्ञानी को पहिचाना, उसी ने ज्ञानी की सच्ची निकटता की तथा जैसा ज्ञानी का भाव है, वैसा भाव अपने में प्रगट किया। इसलिये भाव-अपेक्षा से उसे ज्ञानी के साथ एकता हुई। क्षेत्र से समीप रहकर भी जो ज्ञानपरिणाम से ज्ञानी को नहीं पहिचानता और अपने में ज्ञानपरिणाम प्रगट नहीं करता, वह वास्तव में 'ज्ञानी' के समीप नहीं रहता, ज्ञानी के भाव से वह अत्यंत दूर है।

जब जीव भेदज्ञान करता है, तब वह आस्रव से विमुख होकर अर्थात् बन्धभाव से छूटकर मोक्षमार्ग की ओर अग्रसर होता है। दुःखमय ऐसे आस्रव, और सुखरूप ऐसा ज्ञानस्वभाव—ये दोनों भिन्न हैं, ऐसा भेदज्ञान करनेवाला जीव उसी समय ज्ञानस्वभाव के साथ एकता करके आस्रव से पृथक् हो जाता है। ऐसे ज्ञानपरिणाम का नाम भेदज्ञान है। उसी के द्वारा ज्ञानी की पहिचान होती है।

ज्ञानी धर्मात्मा मानते हैं कि मैं पर से भिन्न एक हूँ, विकाररहित शुद्ध हूँ, और ज्ञान-दर्शन से परिपूर्ण हूँ। ज्ञान से भिन्न जो भी भाव हैं, वह मैं नहीं हूँ।—इसप्रकार वह भेदज्ञानी धर्मात्मा असार और अशरण ऐसे संसार से पराङ्मुख होकर परम सारभूत और शरणरूप अपने स्वभाव की ओर उन्मुख होता है। इसलिये स्वभावोन्मुख ज्ञानपरिणाम को ही वह करता है, ज्ञानपरिणाम के अतिरिक्त अन्य किन्हीं भावों का वह कर्ता नहीं होता, उन्हें तो अपने से भिन्न मानकर उनका ज्ञाता ही रहता है।

आचार्यदेव प्रमोद सहित कहते हैं कि यहाँ से अर्थात् जब से भेदज्ञान हुआ, तब से जगत का साक्षी पुराणपुरुष प्रकाशमान हुआ। भेदज्ञान होते ही चैतन्य भगवान आत्मा अपने ज्ञानपरिणाम से जगमगा उठा... आनंद से शोभायमान हो उठा।

इतनी बात सुनते ही जिज्ञासु शिष्य को प्रश्न उठा कि—प्रभो! ऐसे ज्ञानी को किसप्रकार पहिचानें? चैतन्य भगवान प्रकाशित हुआ, उसे कैसे पहिचाना जाये? वास्तव में शिष्य स्वयं ऐसा भेदज्ञान प्रगट करने के लिये तत्पर है, इसलिये उसे ऐसी जिज्ञासा से प्रश्न उठा है कि मैं ऐसा भेदज्ञान किसप्रकार प्रगट करूँ?

तब आचार्यदेव उससे कहते हैं कि—ज्ञानी अपने ज्ञानमय परिणाम को ही करता है, ज्ञानमय परिणाम का ही कर्तृत्व वह ज्ञानी का लक्षण है; वह ज्ञानी की पहिचान है। जैसे बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं के ध्वज में चिह्न होते हैं; उन चिह्नों द्वारा उन्हें पहिचाना जाता है। ज्ञानी-धर्मात्मा तो राजा के भी राजा हैं तो उनके ध्वज का कोई चिह्न तो होगा?—तो कहते हैं कि हाँ; रागादि के अकर्तृत्वरूप जो ज्ञानपरिणाम, वही ज्ञानी के धर्मध्वज का चिह्न है, उस चिह्न द्वारा ज्ञानी-राजा की पहिचान होती है। और इसप्रकार ज्ञानपरिणाम द्वारा ज्ञानी को पहिचाननेवाला जीव स्वयं भी उस काल ज्ञानस्वरूप होकर कर्तृत्वरहित होता हुआ सुशोभित होता है।

इसप्रकार सम्यग्दृष्टि जीव का चिह्न बतलाया। आचार्यदेव ने बड़ी अद्भुत बात की है! जो इसे समझेगा, उसे अवश्य आत्म-अनुभव होगा।●●

परम शांतिदायिनी

अध्यात्म-भावना

[आत्मधर्म की सरल लेखमाला]

लेखांक ४४-४५] [अंक २८३ से आगे

भगवान श्री पूज्यपादस्वामीरचित 'समाधिशतक' पर पूज्य स्वामीजी के अध्यात्मभावना भरपूर वैराग्यप्रेरक प्रवचनों का सार।

[वीर सं. २४८२ श्रावण कृष्णा १२, समाधिशतक गाथा ७७]

जिसे आत्मस्वरूप में ही आत्मबुद्धि हुई है और देहादिक को अपने से भिन्न मानता है—ऐसे अंतरात्मा को मरण-प्रसंग आने पर क्या होता है, वह अब कहते हैं:—

आत्मन्येवात्मधीरन्यां शरीरगतिमात्मनः।
मन्यते निर्भयं त्यक्त्वा वस्त्रं वस्त्रांतरग्रहम्॥७७॥

चैतन्यस्वरूप आत्मा को जानकर, उसी में जिसने एकत्वबुद्धि की है और देह की गति-परिणति को अपने से अन्य माना है—ऐसे धर्मात्मा को देह छूटने का प्रसंग आने पर भी वह निर्भय रहता है; मैं मर जाऊँगा—ऐसा उसे भय नहीं होता; वह तो जैसे एक वस्त्र छोड़कर दूसरा वस्त्र ग्रहण किया जाता है, तदनुसार मरण को भी मात्र देह का रूपांतर मानता है। एक शरीर बदलकर दूसरा शरीर आये, उन दोनों से अपने आत्मा का भिन्न अनुभव करता है।

धर्मी अंतरात्मा अपने ज्ञानपरिणाम को ही अपना मानता है; शरीर के परिणाम को वह अपना नहीं मानता, उसे तो वह जड़ का परिणमन मानता है। शरीर की उत्पत्ति, बाल, युवा, वृद्ध अवस्थायें या मरण, उन सबसे मैं भिन्न हूँ; मैं तो ज्ञानस्वरूप हूँ; शरीर छूटने पर मेरा ज्ञान नहीं छूटता, इसलिये मेरा मरण नहीं—ऐसे अनुभव में धर्मात्मा को मरण का भय नहीं है। एक शरीर बदलकर दूसरा आया, उससे मुझे क्या? मैं तो निरंतर रहनेवाला ज्ञानस्वरूप ही हूँ। जैसे वस्त्र बदलने पर मनुष्य दु:खी नहीं होता; उसीप्रकार शरीर को वस्त्र की भाँति अपने से भिन्न माननेवाले ज्ञानी को शरीर बदलने पर दु:ख नहीं होता। अभी तो यह शरीर चिता में जलता हो,

उसके पूर्व ही आत्मा स्वर्ग में उत्पन्न हो जाता है। इस शरीर की क्रियाओं का स्वामित्व आत्मा को नहीं है—इसप्रकार प्रारंभ से ज्ञानी ने देह को भिन्न माना है। अपने विविध परिणामों के कारण शरीर की विविध परिणतियाँ होती हैं—ऐसा धर्मी नहीं मानता; धर्मी तो ज्ञानपरिणाम को ही अपना कार्य मानता है, अर्थात् वह ज्ञाता ही रहता है।

इस शरीर के साथ एकक्षेत्रावगाही संबंध होने पर भी आत्मा से वह अत्यंत भिन्न है। शरीर का कार्य शरीर करता है और आत्मा का कार्य आत्मा करता है—इसप्रकार ज्ञानी दोनों के कार्य को भिन्न देखता है; अज्ञानी तो 'मैं बोला, मैं चला'—इसप्रकार आत्मा और शरीर दोनों के कार्य को एकरूप ही देखता है। धर्मी जीव जानता है कि शरीर और संयोग सब मुझसे भिन्न हैं; वे सब यहीं पड़े रहेंगे, मेरे साथ एक डग भी नहीं आयेंगे; मेरे श्रद्धा-ज्ञान-आनंद ही सदा मेरे साथ रहनेवाले हैं—ऐसे अनुभवपूर्वक धर्मी, श्रद्धा-ज्ञान को साथ लेकर जाता है, अर्थात् समाधिमरण करता है। शरीर के त्याग-ग्रहण को वह वस्त्र के त्याग-ग्रहण की भाँति मानता है। झोंपड़ी के नष्ट हो जाने से मनुष्य का नाश नहीं हो जाता; उसीप्रकार इस शरीर-झोंपड़ी के नष्ट होने से कहीं आत्मा का नाश नहीं हो जाता। ऐसा भेदज्ञान करके जिसने ज्ञानस्वरूप आत्मा की भावना भायी है—ऐसे धर्मात्मा को मरण के प्रसंग पर भी समाधि ही रहती है।

प्रभो! एक बार दृष्टि को पलटकर अंतर में चैतन्यस्वभाव पर दृष्टि डाल। ये देह और संयोग कहीं तुझे शरणभूत नहीं होंगे; इसलिये इनकी दृष्टि छोड़ और शरणभूत ऐसे चैतन्य को ही दृष्टि में ले... तो तुझे उसी क्षण से चैतन्य की शरण में सम्यग्दर्शनरूपी समाधि ही रहेगी॥७७॥

अब, इस ७८ वीं गाथा में कहते हैं कि जो जीव व्यवहार को-रागादि को आदरणीय नहीं मानते, वे ही आत्मबोध को प्राप्त करते हैं और जो जीव, व्यवहार को आदरणीय मानते हैं, वे जीव आत्मबोध को प्राप्त नहीं होते:—

व्यवहारे सुषुप्तो यः स जागर्त्यात्मगोचरे।
जागर्ति व्यवहारेऽस्मिन् सुषुप्तश्चात्मगोचरे॥७८॥

जो जीव, व्यवहार में सोते हैं, अर्थात् व्यवहार को आदरणीय नहीं मानते, वे आत्मा के पुरुषार्थ में जागृत हैं; और जो व्यवहार में जागृत हैं—उसी को आदरणीय मानते हैं, वे आत्मा के पुरुषार्थ में सोते हैं, अर्थात् आत्मा के प्रयत्न में वे तत्पर नहीं हैं।

मोक्षप्राभृत की ३१ वीं गाथा में भी कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने यह बात कही है। ज्ञानी को राग तो होता है, परंतु उस राग में वह तत्पर नहीं है; तत्परता तो ज्ञानस्वभाव में ही है। जिन्हें राग में तत्परता है—राग से लाभ मानते हैं, वे जीव, आत्मस्वभाव के प्रयत्न में अनुद्यमी हैं। अज्ञानी जीव कहते हैं कि व्यवहार करते-करते निश्चय की प्राप्ति होगी... यहाँ संत स्पष्ट कहते हैं कि जो व्यवहार में जागृत हैं—तन्मय हैं, वे निश्चय में सोते हैं, अर्थात् वे निश्चय को प्राप्त नहीं होते।

व्यवहार के विकल्प द्वारा-राग द्वारा परमार्थ की प्राप्ति होगी—ऐसा जिसने माना, उसका तो ध्येय ही मिथ्या है, उसने राग को ही ध्येय बनाया है, परंतु परमार्थस्वभाव को ध्येय नहीं बनाया; इसलिये परमार्थस्वभाव को तो वह आदरणीय नहीं मानता, उसमें उद्यमी नहीं होता और राग को ही आदरणीय मानकर उसी में उद्यमी रहता है—उसी में तत्पर रहता है। ज्ञानी की दृष्टि का लक्ष्य पलट गया है, राग होते हुए भी उसका ध्येय चिदानंदस्वभाव की ओर झुक गया है, उसी में वह तत्पर है, उसी का उद्यमी है; राग को वह हेय मानता है, उसमें तत्परता नहीं है। देखो, इसमें रुचि किस ओर जाती है, उसकी बात है। आत्मा के स्वभाव की ओर रुचि जाती है या राग की ओर—उस पर धर्मी-अधर्मी का माप है। अहो! ऐसी सुंदर हितकारी बात कहने पर भी, अज्ञानी जीव कहते हैं कि 'अरे, आप तो व्यवहार को उड़ाते हैं! परंतु क्या किया जाये? वर्तमान काल ही ऐसा है। पूर्व काल में धर्मात्मा जीवों पर कोई संकट आता था तो वहाँ देव सहायता करने आते थे और धर्म का विरोध करनेवालों को दंड देते थे परंतु वर्तमान में कोई पूछनेवाला नहीं है; आजकल तो 'उल्टा चोर कोतवाल को डाँटे'—ऐसी स्थिति हो गयी है। तथापि जो सत्य है, वह तो सत्य ही रहेगा, सत्य कहीं पलटनेवाला नहीं है। लोगों को समझ में न आये और विरोध करें, इससे कहीं सत्य का स्वरूप बदलने वाला नहीं है; इसलिए सत्य समझकर आत्मा का हित करना है, उसे यह बात मानना ही होगी।

❀❀❀

[वीर सं. २४८२, श्रावण कृष्णा १३, शनिवार]

आत्मा की सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान-रमणता, वह समाधि है। आत्मा के स्वभाव को जानकर उसमें जो तत्पर हैं, वे आत्मा में जागृत हैं—आत्मा की आराधना करनेवाले हैं, और रागादि में वे सोते हैं, तथा जो जीव, रागादि में धर्म मानकर उसी में तत्पर हैं, वे अज्ञानी जीव,

राग में ही जागृत हैं अर्थात् राग की ही आराधना करते हैं, परंतु रागरहित चिदानंदस्वभाव की आराधना नहीं करते, उसमें तो वे सोते हैं।

एक-दूसरे से विपरीत दो परिणतियाँ एकसाथ नहीं रह सकती; अर्थात् जिसे चैतन्यस्वभाव में रुचि-तत्परता है, उसे रागादि व्यवहार में रुचि या तत्परता नहीं होती, और जिसे रागादि व्यवहार में तत्परता-आदरबुद्धि है, उसे आत्मा के चैतन्यस्वभाव में तत्परता-आदरबुद्धि नहीं है। चैतन्यस्वभाव और राग दोनों एक-दूसरे से विरुद्ध हैं, इसीलिये उन दोनों की रुचि या आदरबुद्धि एकसाथ नहीं रह सकती। चैतन्यस्वभाव के सन्मुख जिसकी परिणति है—ऐसा सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा, रागादि लौकिक व्यवहार में उदासीन रहता है, उसमें आदरबुद्धि नहीं करता। वह राग में धर्म मानकर आत्मा को बंधन में नहीं डालता, परंतु आत्मा के चिदानंदस्वभाव का ही आदर करके उसी में परिणति लगाता है। इसप्रकार व्यवहार में तत्परता होना वह मोक्ष का उपाय है। चैतन्यस्वभाव में तत्परता, वह समाधि है और चैतन्य से च्युत होकर रागादि व्यवहार में तत्परता, वह असमाधि है।

अहो, प्रथम इस बात का निर्णय करना चाहिये कि मुझे अपने चिदानंदस्वभाव का ही शरण है, राग का शरण नहीं है; चैतन्यस्वभाव के शरण में ही सम्यग्दर्शन होता है। ऐसा निर्णय करने पर, चैतन्यसन्मुख होने से समाधि होती है। सम्यग्दर्शन भी समाधि है और जिसे ऐसा निर्णय नहीं वे मिथ्यादृष्टि जीव, द्रव्यलिंगी मुनि होकर नववें ग्रैवेयक तक जायें, तथापि उन्हें असमाधि ही है। इसलिये प्रथम श्रद्धा में रागादि व्यवहार का आदर छोड़कर शुद्ध ज्ञायकस्वभाव का ही आदर करना—ऐसा संतों का उपदेश है ॥७८॥

मैं शुद्ध ज्ञान और आनंदस्वरूप हूँ; रागादि व्यवहार वे मुझसे बाह्य हैं—ऐसा अंतरंग का भेदज्ञान करके जो जीव, आत्मस्वरूप में जागृत है—उसी में सावधान है, वह मुक्ति को प्राप्त करता है—ऐसा अब कहते हैं—

आत्मानमन्तरे दृष्ट्वा दृष्ट्वा देहादिकं बहिः।
तयोरन्तरविज्ञानादभ्यासादच्युतो भवेत् ॥७९॥

आत्मा को अंतर में तथा देहादिक को अपने से बाह्य देखकर,—इसप्रकार दोनों के भेदविज्ञान द्वारा अभ्यास करने से जीव अच्युत होता है, अर्थात् सिद्धपद को प्राप्त करता है। यहाँ देहादिक कहने पर राग आदि भी उसमें आ जाते हैं, उन रागादि को भी आत्मा के स्वभाव से बाह्य देखना।

देखो, भगवान पूज्यपादस्वामी स्पष्ट कहते हैं कि निश्चय का आदर और व्यवहार के प्रति उदासीनता, वह मुक्ति का कारण है। ज्ञानी, निश्चय और व्यवहार दोनों को जानते अवश्य हैं परंतु दोनों को जानकर, वे निश्चय में (अर्थात् शुद्ध आत्मा में) तत्पर होते हैं और व्यवहार में (रागादि में) तत्पर नहीं होते, परंतु उसे हेय मानते हैं और इसलिये वे मुक्ति को प्राप्त करते हैं परंतु जो जीव, व्यवहार में तत्पर होते हैं, वे तो मिथ्यादृष्टिरूप से संसार में ही परिभ्रमण करते हैं।

प्रश्नः—व्यवहार में तत्पर नहीं होना-यह ठीक है, परंतु व्यवहार करते-करते ही तो निश्चय की प्राप्ति होगी ?

उत्तरः—अरे, भाई! व्यवहार करते-करते निश्चय होगा—ऐसी जिनकी मान्यता है, वे जीव, व्यवहार में ही तत्पर हैं, क्योंकि जिसे लाभ का कारण माने, उसमें तत्पर हुए बिना नहीं रहता।

जो निश्चय का आदर करता है और व्यवहार का आदर नहीं करता, उसी ने निश्चय-व्यवहार दोनों को यथार्थ माना है परंतु जो व्यवहार को आदरणीय मानता है, उसने तो निश्चय-व्यवहार को जाना ही नहीं। जैसे शरीर और आत्मा दोनों को जानने पर भी, धर्मात्मा, जड़-शरीर को अपने से भिन्न बाह्यरूप ही देखता है और अंतरंग में आत्मा का अनुभव करता है; उसीप्रकार रागादिरूप व्यवहार और आत्मा के शुद्धस्वभावरूप निश्चय—इन दोनों को जानने पर भी धर्मात्मा, रागादि व्यवहार को अपने से बाह्यरूप देखता है, और शुद्धस्वभाव का ही अंतरस्वरूप से अनुभव करता है। राग, बाह्य तत्त्व होने पर भी उसे जो अंतरस्वभाव के साथ एकरूप करते हैं, वे मिथ्यादृष्टि हैं; इसलिये आचार्यदेव कहते हैं कि आत्मा का तो अन्तरंगरूप अनुभव करना और रागादि का बहिरंगरूप अनुभव करना—ऐसे भेदविज्ञान के अभ्यास द्वारा जीव अच्युत होता है, अर्थात् अविनाशी मोक्षपद को प्राप्त करता है।

भाई, प्रथम अपने ज्ञान में इस बात को बिठा कि अंतर्मुख होने में ही अपना हित है और रागादि में अपना हित नहीं है। रुचि को बदलना ही मुख्य बात है। रागादि व्यवहार की सहायता से कभी कोई जीव, मुक्ति की प्राप्ति नहीं कर सकता; ज्ञानानंदस्वभाव की दृष्टि से ही मुक्ति की प्राप्ति होती है।

अहो, इस पंचम काल के मुनियों ने भी धर्म की धारा को खंडित नहीं होने दिया, सर्वज्ञ

केवली भगवंतों के भावों को ज्यों का त्यों बनाये रखा है। मुनि तो धर्म के स्तंभ हैं, उन्होंने मोक्षमार्ग को टिका रखा है; स्वयं अपने स्वभाव और राग की भिन्नता का अनुभव करके जगत को भी वह भिन्नता बतलायी है। स्वभाव और राग की भिन्नता को जानकर, स्वभाव में एकाग्रता द्वारा राग से भिन्नता होती जाती है, वही मोक्षमार्ग है। रागादि वास्तव में अपने स्वभाव से बाह्य होने पर भी, अज्ञान के कारण यह जीव उन्हें अपना मानकर उनसे लाभ मानता है; इसलिये वह राग से पृथक् नहीं होता। धर्मी, गृहस्थदशा में हो और रागादि होते हों, तथापि उस समय वह रागादि को हेयतत्त्व—बाह्य तत्त्वरूप ही देखता है और रागादि से भिन्न चैतन्यतत्त्व को ही अंतरंगतत्त्वरूप से देखता है।

देखो, सीताजी धर्मात्मा थीं; और उन्हें ऐसा अनुभव था। रामचंद्रजी के प्रति जो रागभाव था, उस रागभाव को वे अपने आत्मस्वभाव से बाह्यरूप मानती थीं और चैतन्यतत्त्व का ही राग से भिन्न अंतरंग-तत्त्वरूप अनुभव करती थीं। रामचंद्रजी उन्हें वन में भेजते हैं और वहाँ से वर्षों के बाद जब वापिस आती हैं, तब उनकी अग्निपरीक्षा करते हैं। रामचंद्रजी के हृदय में तो विश्वास था कि सीताजी तो महापतिव्रता सती ही हैं... परंतु लोगों के अपवाद को दूर करने के लिये अग्निपरीक्षा की; विशाल अग्निकुंड बनवाया और उसमें अग्नि प्रज्वलित की गयी। सीताजी, अग्नि के पास खड़े होकर महावैराग्य से पंच परमेष्ठी का स्मरण करती हैं... लोग चिंता से भयभीत हो जाते हैं कि अरे! यह अग्नि की ज्वालाएँ तो सीताजी के शरीर को भस्म कर डालेंगी! सीताजी तो अत्यंत वैराग्यपूर्वक सिद्धभगवान आदि पंच परमेष्ठी को नमस्कार करके अग्नि में कूद पड़ती हैं... लोगों में हाहाकार और कोलाहल मच जाता है... परंतु उन भगवती महासती के पुण्य का ऐसा योग था कि उसी समय ऊपर से देवों के विमान सकलभूषण मुनिराज के केवलज्ञान का महोत्सव करने जा रहे थे... उन्होंने धर्मात्मा पर संकट देखकर तुरंत मूसलधार पानी बरसाकर अग्नि बुझा दी... चारों ओर पानी... पानी और पानी! पानी के बीच कमल-सिंहासन पर सीताजी बिराजमान हैं-लोगों के कंठ तक पानी आ गया... और डूबने लगे, इसलिए हे माता! 'बचाओ... बचाओ' ऐसी पुकार करने लगे... तब देव, उपसर्ग का निवारण करके सीताजी की प्रशंसा करते हैं। सब लोग क्षमा माँगते हैं... हे माता! हमारा अपराध क्षमा करो... रामचंद्रजी भी कहते हैं कि—हे देवी! मेरा अपराध क्षमा करो... और अयोध्या पधारो... परंतु सीताजी के मन में इस प्रसंग से वैराग्य जागृत होता है और वे दीक्षा

लेने को तैयार हो जाती हैं। तब लक्ष्मण और लव-कुश रुदन करते हैं... राम कहते हैं कि हे देवी! इस लक्ष्मण के लिये... और इन लव-कुश जैसे पुत्रों के लिये तुम अयोध्या में वापिस चलो। सीताजी कहती हैं कि इस संसार में अब मैं नहीं रहूँगी, संसार की असारता को मैंने देख लिया है... अब तो अर्जिका होकर आत्मा का हित साधूँगी; मैं अपने अंतरंग चैतन्यतत्त्व का ही आराधन करूँगी, अपने चैतन्य को उज्ज्वल करने के लिये इस संसार का त्याग करती हूँ; अब मुझे दूसरा कुछ नहीं चाहिये, मैं अपने स्वरूप की साधना करूँगी, मैंने परभावों को अपने स्वरूप से बाह्य माना था, अब उन परभावों को छोड़ने का तथा चैतन्य के आनंद में स्थिर होने का उद्यम करूँगी—ऐसा कहकर महा वैराग्यपूर्वक अपने कोमल केशों को उखाड़कर रामचंद्रजी के चरणों में डालती हैं... और यह दृश्य देखकर रामचंद्रजी मूर्च्छित हो जाते हैं।

सीताजी जब पृथ्वीमती के पास जाकर दीक्षा लेती हैं, तब लोग रुदन करते हैं; राम-लक्ष्मण रोते हैं, लव-कुश रोते हैं, प्रजाजन रोते हैं, सब सीताजी को मनाते हैं; परंतु वे अपने दृढ़ निर्णय से च्युत नहीं होती और कहती हैं कि—अरे! इस संसार से अब बस होओ-बस होओ... अपने अंतरंग तत्त्व के अतिरिक्त अन्य कोई बाह्यतत्त्व मुझे शरणरूप नहीं है। रागादि परभाव मेरे स्वरूप से बाह्य हैं, वे मुझे किंचित् शरणरूप नहीं। अब मैं अपने अन्तरंग चैतन्यस्वरूप में रहकर रागादि परभावों को छोड़ने का अभ्यास करूँगी।

देखो, यह एक ही मार्ग है। पुरुष हो या स्त्री; रोगी हो या निरोगी; राजा हो या रंक; स्वर्ग में हो या नरक में; वृद्ध हो या बालक; सबके लिये हित का यह एक ही मार्ग है कि शुद्ध चैतन्यस्वरूप आत्मा का अंतरंग में अनुभव करते हुए रागादि समस्त परभावों का अपने से बाह्यरूप अनुभव करना। जिनका अपने से बाह्यरूप अनुभव करे, उन्हें आदरणीय क्यों मानेगा? शरीरादि का बाह्यरूप और चैतन्यस्वरूपी आत्मा का अंतरंगरूप से अनुभव करके उसी में एकाग्रता का अभ्यास करना, वह मुक्ति का कारण है। ऐसा अंतरंग चैतन्यतत्त्व ही जगत का उत्कृष्ट प्रमेय है। स्वज्ञेय होने से वह मुख्य प्रमेय है; ऐसे प्रमेय को जानना ही 'प्रमेयकमलमार्तंड' का सच्चा ज्ञान है; और जो जीव ऐसे स्व-प्रमेय को नहीं मानते वे 'प्रमेयकमलमार्तंड' को नहीं मानते। इसलिये अपने आत्मा को अन्तरंग में देखकर उसे प्रमेय बनाना और रागादि परज्ञेयों का बाह्यरूप अनुभव करना—ऐसा भेदज्ञान द्वारा आत्मा में एकाग्रता का प्रयत्न करना, वही मोक्ष का उपाय है॥७९॥

तीर्थंकरों का मार्ग

[पूज्य स्वामीजी कहते हैं : धन्य मार्ग..... और धन्य ध्येय!]

श्री प्रवचनसार की इस ८०-८१-८२वीं गाथाओं के भाव स्वामीजी को कितने प्रिय हैं, वह तो उनके उपरोक्त प्रमोदपूर्ण उद्‌गारों से ही ज्ञात हो जाता है। स्वामीजी कहते हैं कि तीन काल के तीर्थंकरों ने जिस रीति से स्वाश्रित निर्वाणमार्ग को साधा है और जगत को भी जिसका उपदेश दिया है, उस निर्वाणमार्ग की प्रसिद्धि श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने इन गाथाओं में की है। अहो! धन्य वह मार्ग और धन्य वह ध्येयरूप शुद्ध आत्मा!

संत कहते हैं कि ऐसे मार्ग में और ऐसे ध्येय में अपनी मति को व्यवस्थित करके, हम उस मार्ग को साध ही रहे हैं... मोक्ष को साधना का कृत्य किया जा रहा है।

हे जीव! तुम भी मोक्ष के लिये इसी मार्ग का आश्रय करो... मोक्ष के लिये सर्व तीर्थंकरों द्वारा उपासित एवं उपदिष्ट यह एक ही मार्ग है... अन्य नहीं।

जो जानता अर्हंत को गुण-द्रव्य-पर्यायरूप से।
वह जीव जाने आत्म को, अरु मोह नष्ट अवश्य हो॥८०॥

आचार्यदेव प्रमोदसहित कहते हैं कि अहो, उन तीर्थंकर भगवंतों को नमस्कार हो कि जिन्होंने शुद्धोपयोग द्वारा कर्मक्षय होने के मार्ग का उपदेश दिया और स्वयं उसी मार्ग को साधकर मुक्ति प्राप्त की। देखो, यहाँ मोहक्षय का उपदेश करनेवाले अरहंतों को नमस्कार किया उसमें अपनी जिम्मेवारी है अर्थात् स्वयं भी वैसे मोहक्षय के मार्ग में शुद्धोपयोग द्वारा परिणमित हो ही रहे हैं—ऐसा भावनमस्कार है। णमो अरिहंताणं तब कहा जाये, जब अरिहंत समान अपने शुद्ध आत्मा को अनुभव में ले। यहाँ कहते हैं कि अहो! यह जो शुद्धोपयोगरूप मोक्षमार्ग है, वही सर्व तीर्थंकर भगवंतों द्वारा उपासित एवं उपदिष्ट मार्ग है, और हम भी शुद्धोपयोग प्रगट

धन्य वह मार्ग.... और धन्य ध्येय

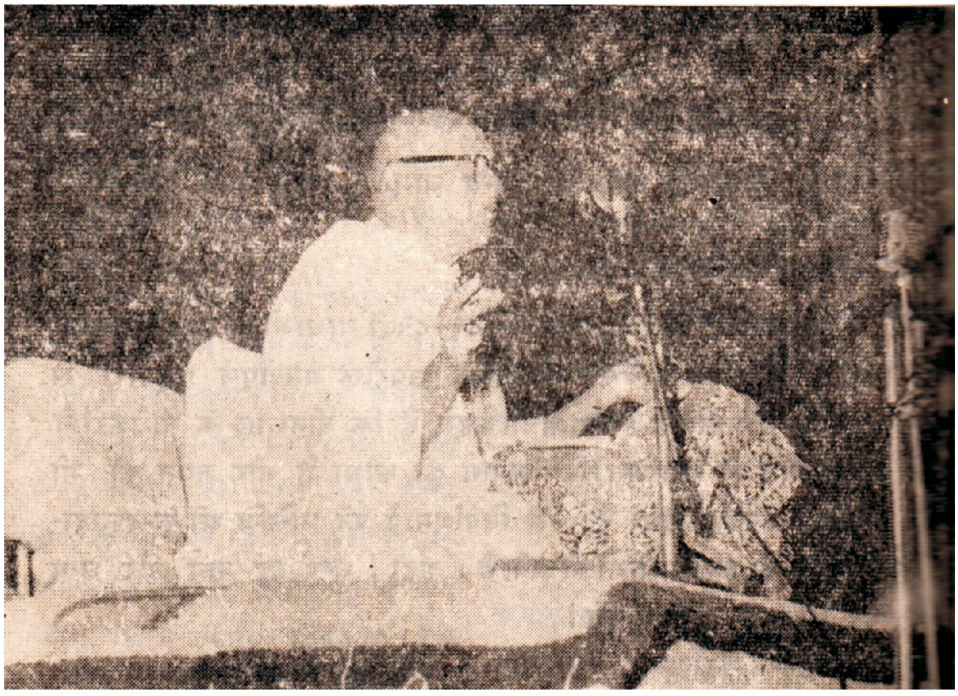

करके तीर्थंकरों के उसी मार्ग पर जा रहे हैं। तीर्थंकरों का और हमारा एक ही मार्ग है; मोक्ष के दो मार्ग नहीं हैं।

साधकदशा का काल असंख्य समय का ही होता है; अभी तक का अनंतकाल व्यतीत हुआ, उसमें अनंत जीव साधक बनकर मोक्ष को प्राप्त हुए। उनमें अनंत जीव तीर्थंकर भी हुए, उन सब जीवों ने किसप्रकार मोक्ष प्राप्त किया? और कैसा उपदेश दिया? तो कहते हैं कि अरिहंत समान अपने शुद्धात्मा की प्रतीति द्वारा सम्यग्दर्शन प्रगट करके, और पश्चात् शुद्धोपयोग द्वारा उसमें लीनता द्वारा राग-द्वेष का क्षय करके सर्व अरहंतों ने मुक्ति प्राप्त की और दिव्यध्वनि द्वारा समवसरण में श्रोतागणों को भी सर्व तीर्थंकरों ने यही उपदेश दिया। अहो, ऐसा उत्तम मार्ग बतलानेवाले भगवंतों को नमस्कार हो।

देखो, अनंत तीर्थंकरों ने क्या किया और क्या कहा—वह बात आचार्य भगवान ने यहाँ प्रगट की है।

प्रश्न—कुन्दकुन्दाचार्यदेव तो अभी दो हजार वर्ष पूर्व हुए और उस समय तो पंचम

काल था, यहाँ कोई तीर्थंकर भी नहीं थे... तो सर्व तीर्थंकरों ने क्या किया और क्या कहा उस बात की उन्हें कैसे खबर पड़ी ?

उत्तर—एक तो उन्होंने विदेहक्षेत्र में विराजमान तीर्थंकर श्री सीमन्धर भगवान के साक्षात् दर्शन और उनकी वाणी का साक्षात् श्रवण किया था; दूसरे, उन्होंने शुद्धोपयोगरूप निजवैभव द्वारा अपने अंतर में साक्षात् मोक्षमार्ग का अनुभव किया था। उस अनुभव किये हुए मार्ग की निःशंकता से कहते हैं कि मोक्ष का मार्ग तीनों काल ऐसा ही है, तीनों काल के जीवों के लिये यह एक ही मोक्षमार्ग है, अन्य मार्ग नहीं है।

भगवान ने जो मोक्षमार्ग का उपदेश दिया, वह कोई कल्पना करके नहीं परंतु स्वयं अपने अंतर में अनुभव करके दिया है, जिस मार्ग से स्वयं मोक्ष प्राप्त किया उसी का उपदेश दिया है। उसीप्रकार (आचार्यदेव कहते हैं कि) हमने भी स्वानुभव से वह मार्ग देखा है; अंतर में देखा हुआ तथा अनुभव किया हुआ मार्ग हमने यहाँ प्रगट किया है। अहो, यह मार्ग कोई साधारण नहीं है; यह तो अनंत तीर्थंकरों—केवली भगवंतों द्वारा उपासित एवं उपदेशित मार्ग है। चार ज्ञान के धारी गणधरों ने जिसे झेला है, इन्द्र और चक्रवर्ती अत्यंत भक्ति सहित जिसकी उपासना करते हैं—ऐसा यही एक त्रैकालिक मार्ग सर्व मुमुक्षुओं के लिये आदरणीय है।

(पूज्य स्वामीजी कहते हैं—वाह, धन्य वह मार्ग!)

अहा, अनंत तीर्थंकर भगवंत जिसके ज्ञान में विराजमान हुए, उसका ज्ञान तो राग से पृथक् होकर मोक्ष की ओर चल पड़ा... अब उस ज्ञान में अनंत भव करना आता ही नहीं; जिस ज्ञान में भवरहित भगवान की प्रतीति हुई, उसमें 'मुझे अनंत भव होंगे' ऐसी शंका नहीं होती, उसे अल्प भव ही होते हैं और भगवान के ज्ञान में भी ऐसा ही दिखायी देता है।

अरे, जगत को केवलज्ञान की खबर नहीं है; केवलज्ञान की प्रतीति करनेवाले मति-श्रुतज्ञान की कितनी शक्ति है, उसकी भी उसे खबर नहीं है। वे मति-श्रुतज्ञान तो केवलज्ञान की जाति के ही हो गये हैं... केवलज्ञान के भव होंगे तो उनके भव होंगे। वे तो भव से और भव के कारण से (-राग से) पृथक् होकर मोक्ष के साधक हुए हैं, वीतरागविज्ञान हुए हैं। केवलज्ञान, वह पूर्ण वीतरागविज्ञान ही है और यह साधक का ज्ञान भले ही अल्प हो, तथापि वह वीतरागविज्ञान ही है। ऐसे ज्ञान में ही सर्वज्ञ की सच्ची प्रतीति हुई है।

'अनंत तीर्थंकर हो गये और अनंत होंगे'—ऐसा स्वीकार करनेवाले ज्ञान की शक्ति

कितनी ? राग में अटका हुआ ज्ञान उसे स्वीकार नहीं कर सकता, क्योंकि वह तो अरहंत को जानता ही नहीं। अरिहंत को जानने से शुद्धात्मा की प्रतीति होती है; और जिस ज्ञान ने अंतर्मुख होकर शुद्धात्मा को जाना, वही ज्ञान पूर्ण शुद्धता को प्राप्त अनंत तीर्थंकरों का यथार्थ स्वीकार कर सकता है।

भगवान मोक्ष को प्राप्त हुए और उनकी वाणी मोक्षमार्ग को बतलानेवाली है। भगवान का उपदेश मोक्षमार्ग की ही पुष्टि करनेवाला है। भगवान ने शुद्धोपयोगरूप मोक्षमार्ग का उपदेश दिया है। चारों अनुयोगों के उपदेश का यही तात्पर्य है। उसके बदले जो राग को मोक्ष का साधन मनवाने का आशय निकाले, वह जीव भगवान के उपदेश को समझा ही नहीं, उसने भगवान को पहिचाना ही नहीं, भगवान ने किस मार्ग से मोक्ष प्राप्त किया, तथा जगत् को कैसा मार्ग बतलाया है, उसकी उसे खबर ही नहीं है। यहाँ तो आचार्यदेव स्वयं मोक्षमार्ग का अनुभव करके कहते हैं कि ऐसे मोक्षमार्ग की सर्व भगवंतों ने उपासना की है और उपदेश में भी ऐसा ही मार्ग बतलाया है।

यही मार्ग वीतराग का... भाख्या श्री भगवान।
ऐसा है तीर्थंकरों का मार्ग! धन्य है उसे!
नमस्कार हो उस मार्ग को और उसके प्रणेता भगवंतो को!
चलो हम भी भगवंतों के उस मार्ग पर चलें!

सिंह का मार्ग

कहते हैं कि—जिस रास्ते से सिंह निकले और उसके पैरों की धूल उड़कर घास पर पड़े, उस रास्ते का वह घास खड़ा-खड़ा सूख जायेगा परंतु हिरन उसे नहीं चरेंगे... सिंह की गंध आते ही हिरन कहीं दूर भाग जाते हैं!

उसीप्रकार दिव्यध्वनिरूपी सिंहनाद में चैतन्य का जो स्वभाव आया और उस स्वभाव का जिसे स्पर्श हुआ, उस जीव की परिणति में आठ कर्मोंरूपी हिरन नहीं आयेंगे.... उसकी परिणति चैतन्य का स्पर्श करके ऐसी वीतराग होगी कि उसकी गंध से आठ कर्मोंरूपी हिरन दूर भाग जायेंगे।

—ऐसा है भगवान वीर का सिंह मार्ग!

विविध समाचार

[गुजरात एवं सौराष्ट्र में पूज्य स्वामीजी का पुनीत विहार]

पूज्य श्री कानजीस्वामी सुख-शांति में विराजमान हैं। प्रतिदिन प्रातःकाल श्री समयसारजी एवं दोपहर को श्री प्रवचनसारजी पर प्रवचन हो रहे हैं। लोग अच्छी संख्या में उपस्थित रहकर लाभ ले रहे हैं। सोनगढ़ से पूज्य स्वामीजी का विहार फाल्गुन कृष्णा ६ तारीख ८-२-६९ हो रहा है, जिसमें वे सौराष्ट्र एवं गुजरात के अनेक नगरों में पधारेंगे। बम्बई मुमुक्षु मण्डल द्वारा पूज्य स्वामीजी का ८०वाँ जन्म-दिवस बड़ी धामधूम से मनाया जायेगा; जिसे 'रत्नचिन्तामणि-महोत्सव' नाम दिया गया है। गुजरात में अहमदाबाद, रणासण, तथा बम्बई में पंच कल्याणक महोत्सव अत्यंत उल्लास एवं उत्साहपूर्वक मनाने की तैयारियाँ जोरशोर से चल रही हैं। पूज्य स्वामीजी के विहार का संक्षिप्त कार्यक्रम निम्नानुसार है—

— कार्यक्रम —

सोनगढ़ से राणपुर—तारीख ८-२-६९, फाल्गुन कृष्णा २।

अहमदाबाद—तारीख ९ से २१ तक। यहाँ जिनेन्द्र पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव फाल्गुन सुदी ५।

रणासण (अहमदाबाद जिला साबरकांठा)—तारीख २७-२-६९ से ६-३-६९, यहाँ जिनेन्द्र पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव, चैत्र कृष्णा २।

हिम्मतनगर—तारीख ७-८-९-३-६९ **फतेपुर**—तारीख १०-११-१२-३-६९

बरवाला (सौराष्ट्र)—१३-३-६९

सावरकुंडला—कानातलाव—तारीख १४ से १७-३-६९। चैत्र कृष्णा १३ तारीख १६-३-६७ रविवार के दिन कानातलाव गाँव में दिगम्बर जिनमंदिर तथा स्वाध्यायमंदिर का शिलान्यास-महोत्सव है।

राजकोट—तारीख १८-३-६९ से ३०-३-६९ **सुरेन्द्रनगर**—तारीख ३१-३-६९

अहमदाबाद—तारीख १-४-६९ **वडोदरा (बड़ौदा)**—तारीख २-४-६९

मीयांगाम करजण—तारीख ३-४-६९ **पालेज**—तारीख ४ से ७-४-६९ तक

सूरत—तारीख ८ तथा ९-४-६९ **बीलीमोरा**—तारीख १०-४-६९

थाणा—तारीख ११-४-६९

बम्बई—तारीख १२-४-६९ शनिवार को पधारेंगे।

✦ ✦ ✦

श्री नवनीतलाल चुनीलाल जवेरी (अध्यक्ष-श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़) की ओर से आजकल श्री ब्रह्मचारी दीपचंदजी गोरे महाराष्ट्र में तथा श्री ब्रह्मचारी रमेशचंद्रजी उत्तरप्रदेश में धर्म-प्रभावना के हेतु भ्रमण कर रहे हैं।

श्री ब्रह्मचारी दीपचंदजी बालचंदनगर से बारामती पहुँचे और वहाँ तारीख २८-९-६८ से ४-१०-६८ तक करीब ६ दिन रहे। बारामती में आपने पूज्य स्वामीजी के श्री समयसार, नियमसार आदि ग्रंथों पर हुए प्रवचन टेपरीलों द्वारा जैन समाज को सुनाये और उनका मराठी में स्पष्टीकरण करके समझाया। प्रतिदिन भक्तिगान आदि का कार्यक्रम दिया एवं पूज्य स्वामीजी की तीर्थयात्रा की फिल्में दिखायीं। मोक्षमार्गप्रकाशक तथा छहढाला पर प्रवचन करके लोगों में एक नया धार्मिक उत्साह पैदा किया।

✦ ✦ ✦

बडगाँव निम्बाळकर :—तारीख ५-१०-६८ को ब्रह्मचारीजी बड़गाँव पहुँचे; वहाँ के लोग काफी समय से आपकी प्रतीक्षा कर रहे थे। चार दिन रहकर आपने समाज में विविध धार्मिक कार्यक्रम प्रस्तुत किये। जिससे प्रभावित होकर समाज ने प्रतिदिन रात्रि को ८ से ९ बजे तक स्वाध्याय करने का निर्णय किया और ब्रह्मचारी जी को एक प्रशस्ति-पत्र दिया।

पणदरे:—तारीख ९-१०-६८ को पणदरे पहुँचे और चार दिन रहे। वहाँ भी विविध कार्यक्रमों द्वारा अच्छी प्रभावना हुई तथा स्वाध्याय-मंडल स्थापित हो गया; जिसके अध्यक्ष पद पर श्री आनंदकुमार रामचंद्र शहा को नियुक्त किया गया। श्री गौतमचंद हीराचंद शहा प्रतिदिन शास्त्र-प्रवचन करेंगे; ब्रह्मचारीजी के आग्रह से मंदिरजी के जीर्णोद्धार की भी योजना बनाई गई तथा बालकों में धार्मिक-संस्कार डालने के लिये पाठशाला खोलने का निर्णय किया गया है।

✦ ✦ ✦

नीरा:—तारीख १३-१०-६८ से १८-१०-६८ तक ६ दिन रहे और प्रतिदिन मोक्षमार्गप्रकाशक, तथा छहढाला पर प्रभावशाली प्रवचन किया; जिससे लोगों को अच्छी

धार्मिक प्रेरणा मिली। फलस्वरूप यहाँ भी स्वाध्याय-मंडल की स्थापना हो गई है। मंडल का अध्यक्ष श्री मोतीचंद रामचंद शहा को नियुक्त किया गया। श्री डॉ. रणदिवे तथा श्री जीवराजजी पदमशी शहा प्रतिदिन प्रवचन करेंगे। नीरा से ब्रह्मचारीजी वाल्हे, अकलूज होकर पुनः सिद्धचक्र मंडल विधान-पूजा का आमंत्रण मिलने से बालचन्दनगर गये और ६ दिन रहकर अच्छी धर्मप्रभावना की। वहाँ से बार्शी, करकंब, दहेगाँव, पंढरपुर, पाटकुल, माढा, कुर्डुवाडी आदि नगरों में होते हुए तारीख २-१-६८ को सोनगढ़ आ गये हैं। इस भ्रमण में श्री ब्रह्मचारी दीपंचदजी ने २० स्वाध्याय-मंडलों की स्थापना की है जो एक सराहनीय कार्य है।

✦ ✦ ✦

आगराः— (तारीख ३-१-६८) ब्रह्मचारी रमेशचंद्रजी ११ दिन ठहरे थे, बहुत उत्तम धर्मप्रभावना हुई। सुबह मुमुक्षु मंडल में तथा शाम को कचैहरी घाट के मंदिरजी में टेपरील द्वारा पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचन सुनाते थे, उसमें से हर विषय को आप सुंदर प्रकार से समझाते थे। हम मुमुक्षुगण दो बार एत्मादपुर ब्रह्मचारी रमेशजी को सुनने गये थे, वहाँ शाम को क्लास लगती है। पंडित धन्नालालजी सा. भी वहाँ शिक्षण वर्ग के उद्घाटन के लिये पधारे थे, एत्मादपुर में ब्रह्मचारीजी द्वारा हमेशा शास्त्रसभा, टेपरील रिकार्डिंग द्वारा स्वामीजी का प्रवचन, शंका-समाधान तथा शिक्षण वर्ग—इसप्रकार तीन घंटे का कार्यक्रम है। —पद्मचंद्र जैन

✦ ✦ ✦

भिण्डः— (तारीख ३०-१२-६८) सकल दिगम्बर जैन समाज ने ब्रह्मचारी हेमराजजी सा. को भाद्रमास में सोनगढ़ से निमंत्रण देकर बुलाया था। आपके द्वारा सर्व जैन समाज को बड़ा भारी संतोष हुआ है। सर्वज्ञ वीतराग कथित तत्त्वज्ञान की रुचि जागृत हुई है। वह जागृति बनी रहे इस हेतु ब्रह्मचारीजी ने तीन महीने से सभी के लिये जैन शिक्षणवर्ग प्रारंभ किया है। प्रतिदिन चार घंटा शास्त्रप्रवचन, शंका-समाधान, जैन शिक्षणवर्ग आदि कार्यक्रम चलते हैं, छोटे-बड़े सभी जिज्ञासुगण अपूर्व रुचिपूर्वक लाभ ले रहे हैं।

समाज के अनुरोधवश ब्रह्मचारीजी फाल्गुन मास तक ठहरेंगे, इसप्रकार काफी दिन से यहाँ अच्छी धर्म-प्रभावना हो रही है। पूज्य स्वामीजी को वंदना।

शुभेच्छु—पंडित बनारसीदास जैन सिंघई,
इन्द्रसेन जैन, रतनलाल जैन

सोनगढ़ में

धार्मिक अध्ययन की योजना

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का ८०वाँ जन्मोत्सव बम्बई में रत्नचिन्तामणि-महोत्सव के रूप में आगामी वैशाख शुक्ला द्वितीया को हर्षोल्लास सहित मनाया जा रहा है। जिसके उपलक्ष में श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट सोनगढ़ ने धार्मिक अध्ययन की एक योजना बनायी है—जिसकी रूपरेखा निम्न प्रकार है:—

(१) जैनधर्म में रुचि रखनेवाले कोई भी त्यागी अथवा सुयोग्य विद्वान सोनगढ़ में रहकर धार्मिक अध्ययन करें। पूज्य आत्मज्ञ संत श्री कानजीस्वामी के प्रवचनों का प्रतिदिन श्रवण करते हुए यहाँ चलनेवाले शिक्षणशिविर में रुचिपूर्वक अभ्यास करें और जो विषय अभ्यासक्रम में रखे जायें, उनमें निपुणता प्राप्त करें।

(२) इसप्रकार जो विद्वान या त्यागी नियमितरूप से दो महीने तक उपस्थित रह सकते हों, उनके लिये यहाँ निवासस्थान एवं भोजनादि की समुचित व्यवस्था कर दी जायेगी। तदुपरांत जिन्हें आने-जाने के लिये मार्ग-व्यय की आवश्यकता मालूम होगी, उन्हें वह भी दिया जायेगा।

(३) शास्त्राभ्यास में निपुणता प्राप्त करने के पश्चात् उन्हें धर्मप्रचारार्थ बाहर भेजा जायेगा। वहाँ वे, पूज्य स्वामीजी जिन जैनसिद्धांतों का प्रतिपादन करते हैं, तदनुसार उपदेश जैन जनता को दें, शिक्षणशिविर खोलें और उनमें विद्यार्थियों एवं प्रौढ़ों को धार्मिक अभ्यास करायें।

(४) जो गृहस्थ विद्वान प्रचार कार्य हेतु जायेंगे, उन्हें योग्यतानुसार वेतन भी दिया जायेगा।

(५) अनुकूल समय पर ऐसे शिक्षणशिविर यहाँ सोनगढ़ में खोले जायेंगे और वे कम से कम दो महीने तक चलेंगे। इसप्रकार वर्ष में तीन बार शिविरों का आयोजन किया जायेगा। फिलहाल दो वर्ष के लिये यह योजना बनायी जा रही है। ऐसा पहला शिक्षणशिविर संभवत: मई महीने में प्रारंभ हो जायेगा।

(६) जो सज्जन उपरोक्त योजना का लाभ उठाना चाहें, वे अपनी शिक्षा (धार्मिक तथा लौकिक), उम्र, वर्तमान कार्य आदि का संपूर्ण विवरण देतु हुए निम्नोक्त पते पर पत्र-व्यवहार करें।—जिन्हें पसंद किया जायेगा, उन्हें उचित समय पर सूचना दी जायेगी और तब उन्हें यहाँ आना होगा।

नवनीतलाल सी. जवेरी
प्रमुख
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट,
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

सोनगढ़
तारीख ४-१-६८

—: विज्ञप्ति :—

श्री समयसारजी शास्त्र (हिन्दी) की तृतीय आवृत्ति प्रकाशित करने की माँग अनेक जिज्ञासुओं की ओर से आ रही है। मुमुक्षुओं से निवेदन है कि—जिन्हें जितनी प्रतियों की आवश्यकता हो, उसकी सूचना अपने नाम-पते सहित भिजवा देवें। पर्याप्त संख्या में आर्डर आ जाने पर छपाई की व्यवस्था की जायेगी।

पता:—
दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

इष्ट क्या है ?

अरे, धन का लोलुपी मनुष्य अपने जीवन की अपेक्षा धन को प्रिय मानता है। समय बीतने पर रुपयों का ब्याज बढ़ेगा, ऐसा वह मानता है परंतु आयु घटती जाती है, इसका उसे कोई विचार नहीं है। उसे धन जितना प्रिय होता है, उतना प्रिय जीवन नहीं होता, इसलिये वह धन के हेतु जीवन को नष्ट कर देता है। इष्ट ऐसे आत्मा को भूलकर उसने धन को इष्ट माना, इसलिये धन के हेतु जीवन बिताता है। परंतु जिसने ऐसा जाना है कि मेरा ज्ञानस्वभावी आत्मा ही इष्ट है, इसके सिवा अन्य कोई मुझे इष्ट नहीं है, वह जीव आत्मा की साधना में अपना जीवन बिताता है। सच्चा इष्ट तो वही है कि जिससे भवदु:ख का अन्त हो और मोक्षसुख मिले।

स्मरण होता है पांडव भगवंतों के धैर्य का!

कुछ ही दिनों पहले पौष कृष्णा १४ को शत्रुंजय-पालीताणा की तलहटी में एक भीषण दुर्घटना हो गई। वहाँ एक श्वेताम्बर जिनालय का निर्माण हो रहा था; जिसकी विशाल छत अचानक टूट पड़ी, और सैकड़ों मजदूर-कारीगर बुरी तरह घायल हो गये। करीब पच्चीस-तीस स्त्री-पुरुष-बालक मृत्यु को प्राप्त हुए। सारे सौराष्ट्र में और देश में अन्यत्र भी इस करुण घटना के प्रति लोगों ने हार्दिक शोक व्यक्त किया; लोगों ने हर संभव सहायता दी और मृत व्यक्तियों के परिवारों को आश्वासन भी दिया। आर्य मनुष्यों के हृदय में अनुकम्पा एवं वैराग्य उत्पन्न हो—ऐसी यह दुर्घटना हो गई।

यों तो दुनिया में इससे भी भीषण दुर्घटनाएँ बाढ़ तथा भूकम्प आदि के कारण होती ही रहती हैं, क्योंकि संयोग तो क्षणभंगुर ही हैं। ऐसी क्षणभंगुरता की घटनाओं से लोगों के हृदय में क्षणिक अनुकम्पा का ज्वार आता है। पालीताणा की इस भीषण दुर्घटना के समय करुणता का जो क्षणिक ज्वार आया था, वह भी उतर चुका है। क्षणिक करुणा या आघात की वृत्ति से आगे बढ़कर शायद ही कोई विचार करता होगा! ज्ञानियों ने तो संपूर्ण वस्तुस्थिति भिन्न ही बतलायी है।

भाई, दु:ख मृत्यु का नहीं है; दु:ख मोह का है। यह वही शत्रुंजय पर्वत है जिसके शिखर पर आज से ८४००० वर्ष पूर्व पांडव मुनिराजों ने मोक्ष प्राप्त किया था। उनके शरीर अग्नि में जल रहे थे, तथापि उस समय भी चैतन्य की शांति में लीनता सहित शरीर का त्याग करके मोक्ष प्राप्त किया... मोह शत्रु को जीतकर सिद्धालय में पहुँच गये। और आज भी वही शत्रुंजय पर्वत है जिसकी तलहटी में अनेक मनुष्यों ने मोह के कारण दु:ख से कराहते-कराहते प्राण छोड़े। शत्रुंज्य पर प्राण तो दोनों के छूटे, परंतु पांडव भगवंतों ने तो शरीर से भिन्न चैतन्य की ऐसी आराधनापूर्वक शरीर छोड़ा कि भव से पार होकर इस शत्रुंजय पर्वत को तीर्थ बना दिया... जिससे हम आज हजारों वर्ष बाद भी उनकी आराधना का स्मरण कर-करके इस पर्वत की तीर्थरूप में पूजा कर रहे हैं—जबकि दूसरे जीव ऐसा न कर सके और मोह से दु:खी होकर प्राणों का त्याग किया, इसलिये उसे हम दुर्घटना मानते हैं। इसप्रकार जीवों के अंतरंग परिणामों के अनुसार जगत की एक ही प्रकार की घटनाओं में भी कैसा महान अंतर पड़ जाता है! इसका

विचार करें तो उस मोहशत्रु को जीतनेवाले वीतरागी पांडव मुनिभगवंतों के जीवन का आदर्श हमें भी उनकी आराधना के प्रति प्रेरित करता है... 'शत्रुंजय' हमें स्थिरता, एकाग्रता एवं वीतरागता का कोई लोकोत्तर संदेश देता है।

शत्रुंजय-संदेश

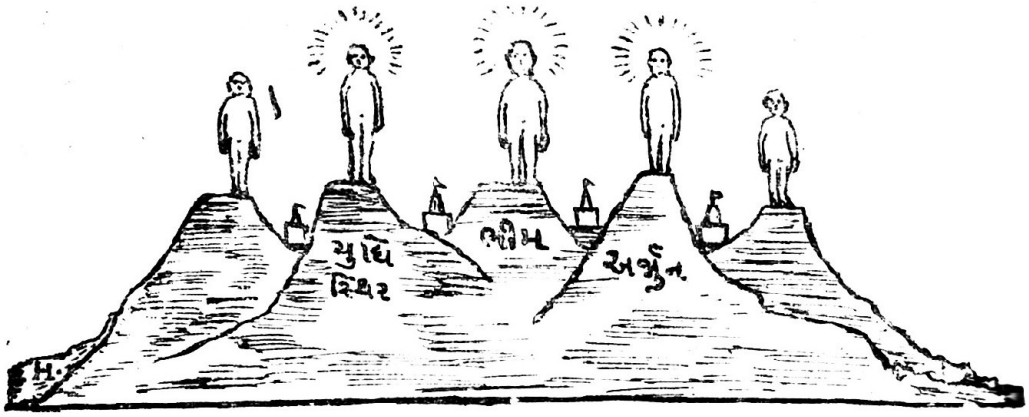

युद्ध के बीच भी जो स्थिर रहे, वह युद्धस्थिर। अनेक प्रकार के संयोग-वियोग एवं परभावरूप जो युद्ध, उसके बीच जो अपने ज्ञान को स्थिर रखता है। परभावों से किंचित् चलायमान नहीं होता—ऐसा युधिस्थिर स्थिर उपयोग द्वारा शत्रुओं को जीतकर सिद्धपद प्राप्त करता है। ऐसा 'युद्ध-स्थिर' बनने का संदेश यह सिद्धक्षेत्र हमें देता है। भीम... अर्थात् पराक्रमी। जो किसी से भयभीत न हो, जिसे कोई जीत न सके, राक्षसों का जो नाश करे... तदनुसार प्रतिकूलताओं के समूह में भी जो निडरतापूर्वक अपने आत्मवीर्यरूप पराक्रम द्वारा मोहादि-क्रोधादि राक्षसों को जीत लेता है, वह भीम मोक्ष प्राप्त करता है और उसकी यह मोक्षभूमि ऐसा संदेश देती है कि रे जीव! तू भीम की भाँति निडर एवं पराक्रमी होकर चाहे जिस परिस्थिति में आत्मा की साधना करना।

अर्जुन... अर्थात् ऐसा बाणावली कि जिसका निशान कभी खाली न जाये, अपने लक्ष्य के प्रति लक्ष को एकाग्रता करके उसे साधे। इसप्रकार अंतर में चैतन्य को ही लक्ष्य बनाकर,

अन्य सब ओर से लक्ष हटाकर उस लक्ष्य में ही लक्ष को एकाग्र किया और सिद्धपद को साध लिया... उन लक्ष्यवेधी अर्जुन भगवान का ऐसा संदेश वह सिद्धक्षेत्र सुनाता है कि अपने इष्ट की सिद्धि के लिये जगत को भूलकर-संयोगों से लक्ष हटाकर चैतन्यस्वभावरूप एक लक्ष्य में ही लक्ष को एकाग्र करके ध्यानरूपी तीर चलाते हुए तुझे अपना इष्ट ऐसा सिद्धपद प्राप्त होगा... तू अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर लेगा।

—यह है शत्रुंजय-संदेश!

शेष दो भाई सहदेव और नकुल.... वे मोक्ष प्राप्त न कर सके। 'अपने भाइयों का क्या हाल होगा!!'—ऐसी चिंता-विकल्प में रुक जाने से वे अपने लक्ष्य को एकाग्रता चूक गये और स्वर्ग में जाना पड़ा।....वे ऐसा संदेश देते हैं कि हे जीवो! परायी चिंता में न रुककर... स्वलक्ष को साधने में 'स्थिर' रहकर 'पराक्रम' द्वारा उस लक्ष में उपयोग को 'एकाग्र' करना।

—इस प्रकार युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन शत्रुंजय के शिखर से स्थिरता, वीरता तथा एकाग्रता का संदेश देते हैं।

सच्ची समाधि

धर्मी जीव जानता है कि शरीर और संयोग सब मुझसे भिन्न हैं, वे सब यहीं पड़े रहेंगे, मेरे साथ एक डग भी चलनेवाले नहीं; अपने श्रद्धा-ज्ञान-आनंद ही सदा साथ रहनेवाले हैं;—ऐसे अनुभवपूर्वक धर्मी श्रद्धा-ज्ञान को साथ लेकर जाता है; इसी का नाम समाधिमरण अथवा सच्ची समाधि है।

विश्वतत्त्वों का सत्यस्वरूप सम्यक् अनेकांत द्वारा बतलाकर सच्चा समाधान, एवं अपूर्व शांति का उपाय दर्शानेवाले—

सुरुचिपूर्ण प्रकाशन

१	समयसार	(प्रेस में)
२	प्रवचनसार	४.००
३	समयसार कलश-टीका	२.७५
४	पंचास्तिकाय-संग्रह	३.५०
५	नियमसार	४.००
६	समयसार प्रवचन (भाग-४)	४.००
७	मुक्ति का मार्ग	०.५०
८	जैनसिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग-१	०.७५
	'' '' '' भाग-२	१.००
	'' '' '' भाग-३	०.५०
९	चिद्विलास	१.५०
१०	जैन बालपोथी	०.२५
११	समयसार पद्यानुवाद	०.२५
१२	द्रव्यसंग्रह	०.८५
१३	छहढाला (सचित्र)	१.००
१४	अध्यात्म-संदेश	१.५०
१५	नियमसार (हरिगीत)	०.२५
१६	धर्म के संबंध में अनेक भूलें	बिना मूल्य
१७	अष्ट-प्रवचन	१.५०
१८	मोक्षमार्गप्रकाशक (ढूंढारी भाषा में) (सस्ती ग्रंथमाला दिल्ली)	२.२५
१९	टोडरमलजी स्मारिका	१.००
२०	अपूर्व अवसर-प्रवचन	१.५०
२१	बालबोध पाठमाला	०.५०
२२	वीतरागविज्ञान पाठमाला	०.६५
२३	लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०.२५
२४	सन्मति संदेश (पूज्य श्री कानजीस्वामी विशेषांक)	०.५०
२५	मंगल तीर्थयात्रा (गुजराती-सचित्र)	६.००

प्राप्तिस्थान :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट,

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट सोनगढ़ के लिये प्रकाशक एवं मुद्रक :

मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)